ग्रामीण पाठकों के लिए

स्वतंत्रता संग्राम का वसंत

(1917 से 1931 के सत्याग्रह)

नारायण देसाई

अनुवाद

सविता गौड़

चित्रकार

दीपक मैत्रा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-3534-0

प्रथम संस्करण : 2001 *(शक 1923)*

Swatantraya-Sangramani Vasant *(Original Gujarati)*
Swatantrata Sangram Ka Vasant *(Translation in Hindi)*

रु. 11.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5, ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

अहिंसा मनुष्य जाति में विद्यमान प्रबल से प्रबल शक्ति है–गांधी जी

भूमिका

1917 से 1931 का अरसा भारत के इतिहास में कभी न भुलाया जा सकने वाला काल है। अपनी आजादी की लड़ाई की यह वसंत ऋतु थी। इस काल के दौरान देश ने सारी दुनिया के सामने अपनी ताकत प्रकट की। वही देश जो तब तक गुलामी का दुखड़ा गाता था, अब सिर उठाकर, छाती तानकर चल पड़ा और दुनिया के सबसे बड़े साम्राज्य के सामने अधिकारपूर्वक अपनी स्वतंत्रता का दावा करने के योग्य हुआ। इन वर्षों के दौरान स्वराज्य के लिए जो आंदोलन हुए, उन्होंने अंग्रेज सरकार की नींव हिला डाली।

यह हलचल अपूर्व थी। देश ने ऐसी हलचल पहले कभी देखी न थी। एक दक्षिण अफ्रीका के सिवाय बाकी सारी दुनिया ने भी ऐसा आंदोलन देखा न था। उस समय तक दुनिया में समाज में परिवर्तन करने के जो प्रयास हुए थे वे या तो भय दिखाकर या लोभ दिखाकर। पर ये आंदोलन ऐसे हुए जिनका आधार भय नहीं था और न ही लोभ। समाज में जबरदस्त परिवर्तन करनेवाली इस नई पद्धति को इसे खोजने वालों ने नाम भी नया दिया था–सत्याग्रह। इसका आधार सत्य था और इसे साधने की संपूर्ण साधना का नाम अहिंसा थी। दुनिया तब तक सत्य के महत्त्व को पहचान गई थी। प्रत्येक युग में दुनिया में ऐसे आग्रही पुरुष हुए भी हैं। परंतु

सत्याग्रह दुनिया के लिए एकदम नया साधन था। सत्याग्रह पाप का सख्त विरोध करता है, परंतु उसका प्रयत्न पापी को पाप से बचा लेने का होता है। इसलिए सत्याग्रह के अंत में कोई किसी का दुश्मन नहीं रहता और अधिकतर तो उसमें दोनों पक्ष अपनी जीत का अनुभव करते हैं। सत्याग्रह में सामने वाले पक्ष को पीड़ा देने के बदले स्वयं राजी-खुशी से अपने आप कष्ट सहन करना होता है। इसमें सत्याग्रही को मारना नहीं बल्कि खुद मरना सीखना पड़ता है। सत्याग्रही एक तरफ तो सामने वाले पक्ष के अन्याय को खत्म करने का प्रयास करता है, तो दूसरी तरफ अपने में अधिक से अधिक शुद्धि लाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार सत्याग्रही की शुद्धि ही सत्याग्रही की शक्ति का मूल आधार होती है।

सामूहिक सत्याग्रह के अनेक प्रकार होते हैं, पर इनमें मुख्य प्रकार लोकशिक्षण, असहयोग, बहिष्कार और सविनय कानून भंग को गिना जा सकता है। हम जिस काल के सत्याग्रहों का विचार करने जा रहे हैं उसमें इन सभी साधनों का उपयोग अपने देश में किया गया था।

सन् 1915 में गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से हमेशा के लिए स्वदेश लौटे। दक्षिण अफ्रीका में वर्षों तक सत्याग्रह का उपयोग कर उन्होंने वहां बसे भारतवासियों को रंगद्वेष और आर्थिक प्रतिस्पर्धा के कारण होने वाले अन्याय से मुक्त कराया था। 'कर्मवीर गांधी' के रूप में गांधी जी का इस देश में भी अच्छा मान था। परंतु इस देश की राजनीति में उनका प्रवेश एकदम नया था। अपने राजनीतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले की सलाह पर गांधी जी ने 1916 का सारा वर्ष सार्वजनिक भाषण करने में बिताने के बजाय पूरे देश में घूम-घूमकर देश की परिस्थिति को गहराई से समझने में बिताया। उन्होंने सदैव रेल के तीसरे दर्जे में यात्रा की। मेलों में जाकर, गांवों में घूमकर उन्होंने देशवासियों की सच्ची मनःस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। वे जनता में हिल-मिलकर उसकी नाड़ी पहचानने लगे थे।

साबरमती में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना कर उन्होंने कुछ उत्तम साथियों का साहचर्य पाया था और सत्याग्रह के लिए जरूरी आंतरिक शुद्धि और साथ ही कुशलता का प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया था।

देश के अनेक नेता गांधी जी की ओर कुछ उत्सुकता और कुछ मानभरी दृष्टि से देखते थे। गोखले जी और तिलक महाराज ने उनकी सार्वजनिक तौर पर प्रशंसा की थी। दादाभाई नौरोजी के साथ उनका दक्षिण अफ्रीका से ही लंबा पत्र-व्यवहार चला आ रहा था। इससे पूर्व दो बार कांग्रेस की वार्षिक बैठकों में उपस्थित होकर उन्होंने देश के अनेक नेताओं का दिल जीत लिया था। कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर के साथ उनकी इतनी आत्मीयता थी कि दक्षिण अफ्रीका से जब वे आए तब गांधी जी के फिनिक्स आश्रम और टाल्सटाय फार्म के आश्रम कुमारों को रवींद्रनाथ ने अपने शांति निकेतन में रहने का स्थान दिया था और खुद गांधी जी जब शांति निकेतन गए, तब वहां के आश्रम के सारे काम स्वयं कर लेने के प्रयोग के विचार का कवि ने स्वागत किया था।

गांधी जी ने जब देश में सार्वजनिक काम करना शुरू किया तब हमारे यहां मुख्य रूप से तीन धाराएं काम कर रही थीं। राजनीति में काम करने वाले नेताओं में कुछ विनीत थे, जिन्हें सामान्य जनता 'नरम दल' का कहती थी। गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेंद्रनाथ बनर्जी आदि उनके नेता थे। दूसरे कुछ उग्रवादी थे। इन्हें लोग 'गरम दल' का कहते थे। तिलक महाराज, लाला लाजपतराय आदि उनके नेता थे। तीसरी धारा आध्यात्मिक पुरुषों की थी जिसमें स्वामी विवेकानंद और अरविंद घोष वगैरह खास आगे थे। ये लोग सीधे तो राजनीति में नहीं थे, परंतु उनके विचारों और साधना का प्रभाव सारे देश के मन पर अचूक पड़ता था।

गांधी जी के देश में आने से पहले ही कांग्रेस का गरम दल और नरम दल में विभाजन हो चुका था। गांधी जी जब आए तब

यह विभाजन जुड़ने के लक्षण दिखा रहा था। नरम दल के लोगों का कार्यक्रम विनय-विवेकपूर्वक अंग्रेजों से देश के लिए सच्चे अधिकार के दावे की मांग कर सुधारों द्वारा देश को आगे ले जाने का था। गरम दल के लोगों को इतने से संतोष न था। ये लोग दबने-छिपनेवाले नहीं, वरन स्पष्टवादी थे और भारत की दुखद परिस्थिति का सटीक वर्णन अपने भाषणों, साथ ही लेखों द्वारा करके अन्याय की कड़े शब्दों में निंदा करना चाहते थे। आध्यात्मिक लोग सेवा और चित्त शुद्धि की साधना द्वारा समाज के स्तर को ऊंचा लाना चाहते थे।

गांधी जी को इन तीन प्रकार के लोगों के कुछ खास गुण आकर्षित करते थे। नरम दल के लोगों की नम्रता उन्हें अच्छी लगती थी। गरम दल के लोगों की स्वराज पाने की उत्कट इच्छा उन्हें आकर्षित करती थी और आध्यात्मिक नेताओं की चित्त शुद्धि की बात उन्हें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में भी बहुत जरूरी लगती थी। गांधी जी के सत्याग्रह के कार्यक्रम में नरम दल की नम्रता थी, गरम दल की तीव्रता थी और आध्यात्मिक लोगों की चित्त शुद्धि थी। इसी से सत्याग्रह के कार्यक्रम में देश के युवकों को इन तीनों का त्रिवेणी संगम साकार होता लगा।

अपने देश में हजारों वर्षों से ध्यान, ज्ञान, दान, तप आदि के द्वारा ऋषियों ने आत्म शुद्धि के माध्यम से मोक्ष के संस्कार सींचे थे। बीच में जब संस्कार क्षीण हुए तब संतों की परंपरा ने इस अग्नि के ऊपर पड़ी कर्मकांड, अंधश्रद्धा, वहम, अज्ञान और आलस्य की राख को अपने सादे, भक्तिमय, तपोमय जीवन के उदाहरण द्वारा हटाकर ज्ञान की आभा प्रकट की। राजा राममोहन राय और रामकृष्ण परमहंस के जमाने से इस देश में समाज सुधार का प्रवाह चला था, जो ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि संस्थाओं और आंदोलनों द्वारा समाज में तेजी से सुधार करने का प्रयास था। गांधी जी के सत्याग्रह के कार्यक्रम में और उनके

सत्याग्रही जीवन में देश को साधना और सुधार का भी मेल दिखाई देता था।

इसके साथ ही राजनीति में एक छोटा पर जोशीला वर्ग ऐसा भी था जो गुलामी को दूर करने में हिंसा का सहारा लेने को सही मानता था और जब-तब हिंसा के काम भी करता था। अंग्रेज उन्हें आतंकवादी कहते थे। देश के लोग इन्हें क्रांतिकारी कहते थे। गांधी जी हिंसा का खुलकर विरोध करते परंतु क्रांतिकारियों के देशप्रेम और उनकी निडरता के गांधी जी प्रशंसक थे।

गांधी जी से पहले लगभग सभी राजनैतिक नेता स्वराज का अर्थ—देश का तंत्र अंग्रेजों के बदले देश के लोगों के हाथों में आए तथा देश के भविष्य का निर्माण देश के लोग ही कर सकें—मात्र इतना ही सीमित करते थे। गांधी जी ने भारत आने से पहले ही 1909 में 'हिंद स्वराज' पुस्तक द्वारा स्वराज विषयक अपनी धारणा स्पष्ट की थी। वे यह मानते थे कि देश की आजादी अंग्रेजों ने नहीं छीनी, वरन् हमने ही आपसी फूट, लालच और अन्य कमजोरियों के कारण अपनी आजादी खोई है। अपनी गुलामी मात्र राजनैतिक गुलामी ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक गुलामी भी है। अंग्रेजों के राज्य द्वारा जो पश्चिमी सभ्यता अपने देश में घर कर रही है, वह इंद्रिय सुखों की ओर दृष्टिवाली एवं जरूरतों को बढ़ाकर भोगवाद का पोषण करनेवाली है। हमारी सभ्यता आत्मा को महत्त्व देकर सादगी, संयम, संतोष, स्वाश्रय, स्वावलंबन द्वारा शांतिमय समाज की रचना करनेवाली है। इंद्रियों को मुख्य समझनेवाली पश्चिमी भोगवादी सभ्यता की जगह जब हम आत्मा का उत्कर्ष साधनेवाली संयमी-संतोषी सभ्यता स्थापित कर सकेंगे, तभी सच्चे अर्थ में हिंद को स्वराज मिलेगा। गांधी जी मानते थे कि स्वराज यानी 'स्व का राज' नहीं, अपितु 'अपने ऊपर राज'।

ऐसे आदर्शों को लेकर गांधी जी ने हमारे देश के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया था। उनकी पूंजी थी दक्षिण अफ्रीका में उनके

द्वारा खोजा गया निश्चित परिणाम देनेवाला साधन—सत्याग्रह। अपने आदर्शों व मूल्यों को अपने रोज के जीवन में ढाल लेने का उनका जोश, लोगों के बीच जाकर लोगों की भावनाओं को परखने की उनकी चतुराई और अपने से पहले के सभी नेताओं के गुणों को देखकर उनके प्रति भरपूर आदर और नम्रता से कार्य करने का तरीका, फिर भी अपने को जो सत्य लगे उसे सारे जगत का विरोध सहन कर भी स्पष्ट करने और उस पर डटे रहने की उनकी दृढ़ता—इन गुणों को लेकर गांधी जी ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया था।

चंपारण

प्रवेश का निमित्त बना था उत्तर बिहार का चंपारण। गांधी जी 1916 की लखनऊ की कांग्रेस महासभा की बैठक में भाग लेने गए थे। गरम दल और नरम दल के नेताओं के बीच समझौता और हिंदू-मुस्लिम नेताओं के बीच के करार के कारण इस महासभा में जबरदस्त उत्साह का वातावरण था। इस महासभा में उत्तर बिहार का एक किसान अपने यहां किसानों पर नील के कारखानों के गोरे मालिकों द्वारा किए जाने वाले जुल्मों से संबंधित फरियाद सुनाने के लिए, एक के बाद एक नेताओं से मिलने का प्रयास कर रहा था। परंतु सामान्य रूप से उच्च-मध्य वर्ग के और पढ़े-लिखे इन नेताओं के पास राजकुमार शुक्ल नाम के इस किसान की परेशानी की बात सुनने की फुरसत नहीं थी। उसने देखा कि गांधी जी दूसरे नेताओं की तरह व्यस्त नहीं थे। कारण यह था कि वे कांग्रेस में नए-नए आए थे और उनके सिर पर बड़ी जिम्मेदारियां नहीं थीं। इतना ही नहीं, वे काठियावाड़ी पगड़ी और साफा में और नेताओं से अलग और कुछ-कुछ अपने जैसे दिखाई देते थे। इसलिए उसने गांधी जी से चंपारण की 'तिनकठिया व्यवस्था' (इस व्यवस्था के

अंतर्गत यहां के किसानों को उसके हर बीघे जमीन के तीन कट्ठे अंश पर नील की खेती करना अनिवार्य कर दिया गया था) की बात की।

गांधी जी के आंदोलन में दक्षिण अफ्रीका में 'गिरमिटिया' किसान (भारत से मजदूरी कराने के लिए एक 'एग्रीमेंट' के अंतर्गत दक्षिण अफ्रीका ले जाये गए लोग 'गिरमिटिया'–'एग्रीमेंट' का अपभ्रंश–किसान कहलाते थे।) और खान के मजदूर साथ थे और वे गरीब लोगों की सच्चाई, उनकी कष्ट सहन करने की शक्ति और उनकी वफादारी पर मुग्ध थे। साथ ही, किसी के भी साथ बात करते हुए उसकी बात बड़े ध्यान से सुनने का गांधी जी का स्वभाव था। इसी से गांधी जी और राजकुमार शुक्ल में मेल बैठ गया। गांधी जी को लगा कि राजकुमार शुक्ल की बात में सच्चाई है और किसानों के प्रति उनके मन में वास्तविक पीड़ा है। परंतु खुद जांच-पड़ताल किए बिना कोई प्रश्न हाथ में न लेने की गांधी जी की आदत थी। लखनऊ कांग्रेस के तुरंत बाद का उनका कार्यक्रम पहले से ही निश्चित हो चुका था। हां, थोड़े दिन बाद वे कलकत्ता जाने वाले थे। वहां राजकुमार शुक्ल आकर उन्हें साथ ले जाएं, यह निश्चित कर उनके साथ चंपारण जाने की बात गांधी जी ने कबूल कर ली। इसमें शायद यह भी कल्पना रही होगी कि अगर शुक्ल जी को अपने प्रश्न के समाधान में सच्ची रुचि होगी तो वह कलकत्ता पहुंच जाएंगे और अगर उनकी बात गंभीर नहीं होगी तो वे कलकत्ता तक आने का जहमत उठाएंगे ही नहीं। परंतु कलकत्ता की बैठक के समय राजकुमार शुक्ल तो सचमुच आ पहुंचे और गांधी जी भी अपने दिये गए वचन को निभाने हेतु दूसरे कार्यक्रम छोड़कर राजकुमार शुक्ल के साथ चंपारण जाने को तैयार हो गए। इस तरह गांधी जी की अपने देश की पहली सत्याग्रह यात्रा की शुरुआत हुई।

कलकत्ते से दोनों पटना गए। राजकुमार गांधी जी को बाबू

राजेंद्र प्रसाद के यहां ले गए, परंतु वे घर पर नहीं थे। गांधी जी की पटना के मौलाना मजहरुल हक़ से पूर्व पहचान थी। उन्होंने चिट्ठी लिखी। मौलाना स्वयं गाड़ी लेकर लेने आए। परंतु उनके घर रुकने के आग्रह को छोड़कर गांधी जी ने उनसे चंपारण जाने की व्यवस्था करने की बात कही। मौलाना ने गांधी जी को पहले मुजफ्फरपुर जाने को कहा। आचार्य कृपलानी उन्हें तथा गांधी जी को पहचानते थे। आधी रात को गांधी जी की ट्रेन मुजफ्फरपुर पहुंची। वहां आचार्य कृपलानी अपनी शिष्य मंडली के साथ गांधी जी का स्वागत करने के लिए स्टेशन पर खड़े थे। मुजफ्फरपुर में गांधी जी से बिहार के कुछ वकील मिले। उन्होंने उनसे कहा कि राजकुमार शुक्ल द्वारा की गई फरियाद में सच्चाई है। किसानों की ओर से कोर्ट में केस लड़ने वाले ये वकील अच्छी-खासी फीस लिया करते थे। गांधी जी ने उनसे इस पीड़ित प्रजा को कोर्ट-कचहरी के जंजाल से मुक्त करने की सलाह दी। उन्होंने कहा, ''जहां लोग इतने भयभीत रहते हों, वहां कचहरी के मार्फत इलाज थोड़े ही होगा ? लोगों का डर निकालना ही उनके लिए सही और असली औषधि है।''

उत्तर बिहार में नील की खेती होती थी। नील के भाव अंतर्राष्ट्रीय बाजार के हिसाब से घटते-बढ़ते रहते। भाव बढ़े चाहे घटे, तब भी अपने कारखानों को कच्चा माल नियमित रूप से मिलता रहे, इस दृष्टि से नील के गोरे कारखाने वालों (जिन्हें 'नीलवर' कहा जाता था) ने ऐसी परंपरा डाली कि प्रत्येक किसान को अनिवार्य रूप से अपने खेत में तीन कट्ठा जमीन पर नील की खेती करनी होगी। किसानों को नील की खेती महंगी पड़ती थी, तो भी उसके लिए नीलवर उन पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे। गांधी जी इसकी ही जांच करने निकले थे। गांधी जी ने रोग की जड़ पकड़ी और वकीलों से कहा कि जब तक तिनकठिया प्रथा खत्म न हो जाए, तब तक हम चैन से नहीं बैठ सकते। गांधी जी

ने यह भी देख लिया था कि वे तो दो दिन के लिए परिस्थिति देखने आए हैं, पर इस काम में तो दो बरस लग सकते हैं। खुद इसकी तैयारी रखकर उन्होंने वकीलों से कहा कि इस काम में उनकी मदद की जरूरत पड़ेगी। वकीलों ने पूरी रात गांधी जी के साथ चर्चा में बिताई। गांधी जी ने उनसे कहा कि "मुझे तुम्हारी वकालत की शक्ति का कम काम पड़ेगा, तुम्हारे जैसों से मैं कातिब का और दुभाषिया का काम चाहता हूं। इसमें जेल भी जाना पड़ सकता है। तुम यह जोखिम उठाओ, यह मुझे अच्छा लगेगा। पर वह न उठाना हो तो भले ही न उठाओ। पर वकील न रहकर कातिब होना और अपना धंधा अनिश्चित समय के लिए छोड़ देना—यह कुछ कम नहीं मांग रहा हूं।"

बिहार के अग्रणी वकील श्री ब्रजकिशोर बाबू ने गांधी जी की बात को समझा। उन्होंने अच्छी तरह प्रश्न पूछकर पूरी बात को स्पष्ट कर लिया। अंत में अपना निश्चय बताया, "हम इतने लोग, आप जो भी काम सौंपेंगे, उसे करने के लिए तैयार रहेंगे। जेल जाने की बात नई है। उसके लिए शक्ति प्राप्त करने की कोशिश करेंगे।"

गांधी जी को तो किसानों की हालत की जांच करनी थी। फरियादों में कितना सत्य है, यह देखना था। इसके बारे में हजारों मजदूरों से मिलना था। पर इसके पहले नील के मालिकों और कमिश्नर से भी मिलने की उन्हें जरूरत लगी।

सत्याग्रही 'अपने पक्ष में ही सारा सत्य है' यह मानकर नहीं चलता। वह अपना मन खुला रखता है और सामने वाले पक्ष की बात को भी पूरी-पूरी समझने की कोशिश करता है।

गांधी जी ने नील के मालिकों के संगठन के सचिव और तिरहुत के कमिश्नर को पत्र लिखा। सचिव ने तो गांधी जी को साफ सुना दिया कि "आप परदेशी कहलाएंगे। हमारे और किसानों के बीच में आपको नहीं आना चाहिए। फिर भी आपको कुछ कहना

हो तो आप मुझे लिखकर बताएं।" गांधी जी ने सचिव से विनयपूर्वक कहा, "मैं अपने को परदेशी नहीं मानता, किसान चाहें तो मुझे उनकी स्थिति जांचने-देखने का पूरा अधिकार है।" कमिश्नर ने तो गांधी जी को धमकाना शुरू कर दिया और मुजफ्फरपुर से आगे बढ़े बिना तिरहुत कमिश्नरी छोड़ जाने की सलाह दी।

गांधी जी ने साथियों से बात की कि जांच करते हुए सरकार उन्हें रोके तो जेल जाने का समय जो उन्होंने सोचा है, उससे पहले भी आ सकता है। गांधी जी ने यह भी निश्चित कर लिया कि अगर बंदी बनना ही पड़े तो चंपारण जिले के मोतीहारी या बेतिया में ही गिरफ्तार होना चाहिए। मोतीहारी चंपारण जिले का मुख्य शहर था और बेतिया में राजकुमार शुक्ल का घर था। उसके आसपास के किसान ज्यादा गरीब थे, ऐसा भी गांधी जी ने सुना था।

दूसरे ही दिन गांधी जी मोतीहारी पहुंच गए। मेजबान गोरखबाबू का घर तो पहले ही दिन से मानो धर्मशाला ही बन गया। गांधी जी ने सुना कि वहां से पांचेक मील दूर एक किसान पर बहुत अत्याचार हुआ था। गांधी जी एक वकील को साथ लेकर वहां जाने के लिए हाथी पर निकले। उन दिनों बिहार में सवारी के लिए हाथी का बहुतायत में उपयोग किया जाता था। आधे रास्ते में पुलिस सुपरिंटेंडेंट के आदमियों ने आकर कहा कि आपको सुरिंटेंडेंट साहब ने सलाम कहा है। वकील को आगे जाने को कहकर गांधी जी सुपरिंटेंडेंट की किराए की गाड़ी में बैठे। गाड़ी में बैठते ही उसने गांधी जी को चंपारण छोड़ जाने का नोटिस दिया। गांधी जी ने लिख दिया कि मैं चंपारण छोड़ना नहीं चाहता। मुझे आगे बढ़कर जांच करनी है। शहर छोड़कर जाने के आदेश का अनादर करने के कारण दूसरे दिन कोर्ट में हाजिर रहने का गांधी जी को समन मिला। सारी रात जागकर गांधी जी ने कुछ जरूरी बातें लिखीं और जो सूचनाएं देनी थीं, वे ब्रजकिशोर बाबू को दीं।

घड़ीभर में समन की बात सब ओर फैल गई। कभी न देखा

गया दृश्य मोतीहारी में देखने में आया। मेजबान का घर और कचहरी लोगों से भर गई। उनके साथी लोगों को संभालने में जुट गए। कलेक्टर, मजिस्ट्रेट, सुपरिंटेंडेंट वगैरह के साथ गांधी जी ने नम्रता भरा व्यवहार रखा। सरकारी नोटिसों का वे कानूनन विरोध कर सकते थे पर उसके बदले उन्होंने सब नोटिस स्वीकार किए। अफसर समझ गए कि गांधी जी को उनका व्यक्तिगत विरोध करना नहीं, परंतु उनके आदेश का विनय के साथ विरोध करना था। इससे उन्होंने एक प्रकार की निर्भयता का अनुभव किया। गांधी जी को परेशान करने के बदले उन्होंने गांधी जी और उनके साथियों का, लोगों को काबू में रखने के लिए उपयोग किया। परंतु साथ-साथ वे यह भी समझ गए कि उनकी अपनी सत्ता लुप्त हो रही थी और गांधी जी की सत्ता लोगों पर जम रही थी। लोगों ने दंड का भय खोया, इसी से अपने नए मित्र गांधी जी की प्रेम की सत्ता के वश में हो गए।

आगे की बात गांधी जी के शब्दों में ही देखें–

"केस चला। सरकारी वकील, मजिस्ट्रेट आदि घबराये हुए थे। उन्हें सूझ नहीं रहा था कि क्या करें। सरकारी वकील सुनवाई मुलतवी रखने की मांग कर रहा था। मैं बीच में पड़ा और कहा कि मुलतवी रखने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि मुझे चंपारण छोड़कर जाने की नोटिस का अनादर करने का गुनाह कबूल करना है। ऐसा कहकर मैंने बहुत ही छोटा बयान तैयार किया और उसे पढ़ गया। कानून का आदर करने वाले प्रजाजन की तरह तो मुझे दिये गए हुकुम को स्वीकारने का स्वाभाविक मन होता और हुआ भी, परंतु वैसा करने से, जिनके लिए मैं यहां आया था, उनके प्रति मेरे कर्तव्य का हनन होगा, ऐसा मुझे लगा। मुझे लगता है कि आज उनकी सेवा उनके मध्य में रहकर ही हो सकती है। इसलिए स्वेच्छा से मैं चंपारण छोड़ने को तैयार नहीं हूं। ऐसे धर्मसंकट में मुझे

चंपारण से हटाने का दायित्व मैं सरकार पर डाले बिना न रह सका।

"हिंद के लोकजीवन में, जिनकी मेरी जैसी प्रतिष्ठा है, ऐसे व्यक्ति को कोई भी कदम उठाकर उदाहरण पेश करने में बहुत सावधानी रखनी चाहिए, यह मैं अच्छी तरह से समझता हूं। मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि आज जिस परेशानी की स्थिति में हम आ पड़े हैं, उसमें मेरी जैसी परिस्थिति में पड़े स्वाभिमानी व्यक्ति के पास दूसरा कोई सुरक्षित और मानपूर्ण रास्ता नहीं—सिवाय आदेश का अनादर करके, उसके बदले में मिलनेवाली सजा को मौन रहकर सहन करना।

"मुझे जो सजा देना चाहते हो, उसे कम करने के सोच से मैं यह बयान नहीं दे रहा हूं। हुक्म का अनादर करके कानूनन स्थापित सत्ता का अपमान करने का मेरा उद्देश्य नहीं है। मेरा अंतर जिस दूसरे बड़े कायदे को स्वीकारता है, यानी कि अंतरात्मा की आवाज, उसका ही अनुसरण करने का मेरा उद्देश्य है—यही मुझे बताना है।

"अब केस की सुनवाई स्थगित रखने की बात तो नहीं रही। परंतु मजिस्ट्रेट या वकील इस परिणाम की आशा नहीं रखते थे, इसके कारण सजा के लिए कोर्ट ने केस स्थगित रखा। मैंने सारी हकीकत बताते हुए वायसराय को तार भेज दिया था। भारत भूषण, पंडित मालवीय जी आदि ने भी हकीकत का तार कर दिया था। सजा के लिए कोर्ट में जाने का समय आया उससे पहले मेरे पास मजिस्ट्रेट का आदेश आया कि गवर्नर साहब के आदेश से केस हटा लिया गया है और कलेक्टर का पत्र मिला कि मुझे जो जांच करनी हो, वह मैं करूं और उसमें अफसरों की ओर से जो जरूरत हो, वह मांग ली जाए। ऐसे तात्कालिक और शुभ परिणाम की आशा हममें से किसी को भी नहीं थी।"

('सत्य के प्रयोग' छठी आवृत्ति, पृ. 562-63 से उद्‌धृत)

इस समय तक यह प्रकरण समाचारों में आ गया। गांधी जी को इस काम के लिए पत्रकारों के दखल की जरूरत नहीं थी। इसलिए उन्होंने पत्रकारों से विनती की कि अगर कोई समाचार होगा तो वे स्वयं लिखकर भेज देंगे। किन्हीं खास पत्रकारों को यहां भेजने की तकलीफ न करें। समाचार पत्र वालों ने उनकी यह बात मान ली। इसी से समाचार खूब तोले हुए शब्दों में ही प्रकट होते।

ब्रजकिशोर बाबू की निंदा करने में नीलवरों ने जरा भी कमी नहीं रखी, पर जैसे-जैसे उनकी निंदा होती गई वैसे-वैसे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई।

पूरे जांच के काम के लिए किसानों से एक कौड़ी भी न लेने का गांधी जी ने निर्णय लिया था और देश से भी इसके लिए सार्वजनिक चंदा न लेने का उनका विचार था। बंबई के मित्रों ने 15,000 रु. भेज दिए। चंपारण को छोड़कर बिहार के दूसरे क्षेत्र के लोगों से पैसा लेने की गांधी जी ने ब्रजकिशोर बाबू को सलाह दी। यह होते हुए भी इस सारे काम में जरूरत पड़े तो गांधी जी के मित्र प्राणजीवन मेहता कमी पूरी करने के लिए तैयार थे।

जांच का काम ही भारी लोकशिक्षण का काम बन गया। अहले सुबह से देर रात तक किसानों के झुंड-के-झुंड अपनी-अपनी फरियाद नोट कराने आते। गांधी जी अपने वकील मंडली को, जिसमें बाद में महादेवभाई, नरहरिभाई, अवंतिकाबाई वगैरह भी मिल गए थे, यह निर्देश दिया कि फरियादों को पूरी परीक्षण और देख-समझ कर नोट करें, जिससे कि बाद में यदि कोई पूछताछ हो तो फरियाद टिकी रहे। फरियादों में बात को बढ़ा-चढ़ाकर न रखी जाए इसकी सावधानी रखी जाती, बल्कि बात को जरा हल्के रूप में रखा जाए ऐसा आग्रह होता। उनकी बातें सुनने वालों और उसे पूरे विधिपूर्वक लिखने वाले सेवाभावी कार्यकर्ताओं को पाकर चंपारण के किसान चींटियों की पंक्तियों की तरह प्रकट होने लगे।

गांधी जी का जीवन बिहार के वकीलों के लिए भी एक सीख देने जैसा हो गया। ये बड़े-बड़े वकील अपने साथ अपने-अपने रसोइए लाए थे। गांधी जी ने सबकी रसोई एक साथ कर उन रसोइयों को विदा किया। मणिबहन पारीख और दुर्गा बहन देसाई के ऊपर सबको खिलाने आदि की जिम्मेदारी आई। अलबत्ता सब्जी साफ करने, काटने और परोसने आदि के कामों में साबरमती आश्रम की तरह यहां भी भाइयों की मदद मिल जाती थी। वकील अपने कपड़े धुलवाने के लिए पटना भेजते थे। गांधी जी उनके कपड़े इकट्ठा कर एक रात को खुद ही धोने शुरू कर दिए। वकील शरमाए और उन्होंने खुद कपड़े धोने का पहला पाठ पढ़ा। अपनी आत्मकथा में बाबू राजेंद्र प्रसाद ने इस बारे में लिखा है कि गांधी जी के साथ का ऐसा सादा जीवन ही उनके जीवन निर्माण का पाठ बन गया।

वहां पुलिस के आदमी छिपे रूप में आते। गांधी जी ने नियम बना दिया था कि उन्हें रोका न जाए, उनके साथ विनयपूर्ण व्यवहार किया जाए और देने योग्य समाचार उन्हें दिया भी जाए। उनके सामने ही सारे बयान लिए जाते। साथियों के मन से छिपा हुआ पुलिस का भय निकल गया और उनके बयानों में बढ़ा-चढ़ाकर कहने का खतरा भी टल गया।

जिसके बारे में विशेष शिकायत होती, उससे गांधी जी मिलने का भी प्रयास करते। गांधी जी उन्हें परेशान नहीं करना चाहते थे, विनय से उन्हें जीतना चाहते थे।

यह काम करते हुए गांधी जी को बिहार की दरिद्रता और अज्ञानता के भी दर्शन हुए। उनके बीच सफाई, संस्कार और शिक्षण देने की भी उन्हें जरूरत लगी। इसलिए उन्होंने स्वयंसेवकों की मांग की। देखते-देखते उन्हें अनेक राज्यों से, खासकर गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक से चुनिंदा स्वयंसेवक मिल गए। इन स्वयंसेवकों में से बहुत-से तो बाद में सारे जीवन के लिए गांधी जी के वफादार

साथी बन गए।

जैसे-जैसे गांधी जी के पास फरियादियों का आना-जाना बढ़ता गया, वैसे-वैसे नीलवरों का क्रोध बढ़ता गया। गांधी जी का जांच करने का काम बंद करवाने के उनके प्रयास बढ़ते गए। एक दिन गांधी जी के पास बिहार की सरकार का पत्र आया कि आपकी जांच बहुत लंबी चली, अब उसे बंद करके आपको बिहार छोड़ देना चाहिए। गांधी जी ने जवाब में लिखा कि जांच अभी और चलेगी और उसके बाद भी लोगों के दुख का निवारण जब तक न हो, तब तक बिहार छोड़ने का उनका इरादा नहीं है। जांच बंद करने का सरकार के पास एक ही उपाय था, या तो जांच को सच मानकर मान्य रखना, या सरकार की तरफ से जांच समिति नियुक्त करना। गवर्नर सर एडवर्ड गेइटे ने गांधी जी को मिलने हेतु बुलाकर जांच समिति नियुक्त करने का अपना इरादा बताया। उसमें सदस्य बनने का गांधी जी को निमंत्रण मिला। गांधी जी ने कहा कि मुझे साथियों से सलाह लेने की छूट होनी चाहिए। उन्होंने दूसरी शर्त यह रखी कि जांच समिति के सदस्य बनने से वे किसानों के हिमायती के रूप में खारिज नहीं हो जाएंगे। जांच पूरी होने के बाद उनको संतोष न हो तो किसानों को रास्ता दिखाने की स्वतंत्रता खो देने को वे तैयार नहीं थे। गवर्नर ने दोनों शर्तें मंजूर कर लीं। एक नीलवरों का प्रतिनिधि, किसानों के प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी और सरकार के प्रतिनिधि के रूप में सर फ्रेंक स्लाई समिति में लिये गए। सर स्लाई ही समिति के प्रमुख नियुक्त हुए।

समिति के पास जब तक 'तिनकठिया' व्यवस्था संबंधी प्रश्न पहुंचा, तब तक तो गांधी जी के साथियों ने हजारों शिकायतें नोट कर ली थीं। समिति नियुक्त होने के बाद भी दूसरी फरियादें लिखाई जाती रहीं। इस प्रकार अंत तक समिति के पास पच्चीसेक हजार फरियादें पहुंच गईं।

इन फरियादों को झूठा सिद्ध करना असंभव था। यह देखकर

नीलवर घबराए। उन्होंने किसानों पर जो अत्याचार किए थे, वे कोई कानूनी कदम नहीं थे। किसानों को पीटना, चाबुक मारना, उनका सुख-संसार छीन लेना, उन्होंने तीन कट्ठा के हिसाब से खेती की है या नहीं—यह देखने के लिए अपनी अलग कोर्ट स्थापित करना, अपना खुद का कैदखाना बनाकर, उसमें किसानों को बंद रखना वगैरह अनेक प्रकार के गैर कानूनी कामों के लिए नीलवर जिम्मेदार सिद्ध हों, ऐसी बात थी। समिति में दो गोरे और गांधी जी के रूप में एक भारतीय थे। फिर भी जांच समिति का ब्योरा सर्वसम्मत विवरण बना। इस सफलता के पीछे गांधी जी की वकील बुद्धि से भी अधिक उनकी अहिंसा संबंधी सूक्ष्म बुद्धि का हाथ था। जांच समिति का काम चल रहा था। उसी दौरान ही नीलवरों को लगने लगा था कि उनके अत्याचार अगर सामने आ गए, तो उन्हें भारी सजा होगी। परंतु गांधी जी को अन्याय का विरोध करना था, अन्यायियों का नहीं। इसलिए नीलवरों को किसी भी प्रकार की सजा हो—ऐसा आग्रह उन्होंने नहीं रखा। उन्होंने मात्र इस बात का आग्रह रखा कि नील की खेती के विषय में अनिवार्य रूप से कट्ठा भर जमीन पर नील बोने की तिनकठिया व्यवस्था खत्म होनी चाहिए। अगर खुद का बचाव हो जाता हो, तो इस व्यवस्था को खत्म करने के लिए नीलवर भी तैयार हो गए। इस प्रकार सौ वर्ष से भी अधिक वर्षों से चली आ रही तिनकठिया की परंपरा जांच समिति की सर्वसम्मत सिफारिश के कारण बनाये गए कानून से खत्म हुई। चंपारण के किसान हमेशा के लिए इस अन्यायी व्यवस्था से मुक्त हुए। प्रजा का जो वर्ग हमेशा दबा हुआ रहता था, उसे अपनी शक्ति का भान हुआ और उसके बाद धीरे-धीरे सभी गोरे नीलवर अपना बोरिया-बिस्तर बांधकर भारत छोड़कर इंग्लैंड लौट गए।

चंपारण के इस सत्याग्रह में सरकार के साथ सीधा मुकाबला नहीं था। साथ ही, गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से आए, तब वहां के

भारतवासियों के लिए जो कर आए थे, उसके कारण भारत के अंग्रेज शासकों को उनके लिए आदर भी था। गांधी जी के प्रति सद्भाव भी इस समस्या के समाधान में काम कर गया होगा—ऐसा कह सकते हैं। इस सत्याग्रह में सत्याग्रहियों को खास कष्ट सहन नहीं करना पड़ा। हालांकि स्वयंसेवकों को रात-दिन एक कर मेहनत करनी पड़ी थी। शिकायत दर्ज करने के साथ ही साथ बिहार में रचनात्मक कामों की शुरुआत भी हो गई थी, जो तिनकठिया प्रथा के खत्म होने के बाद भी गांधी जी के आश्रमवासी साथियों द्वारा कुछ महीनों तक चालू रही थी। चंपारण के कारण पूरे देश को सत्याग्रह का पहला अनुभव मिला। लोगों के हृदय में गांधी जी ने महात्मा के रूप में स्थान प्राप्त किया। सत्याग्रह में पीड़ित पक्ष की सच्चाई ही बड़ी शक्ति बन जाती है—यह सिद्ध हुआ। गांधी जी को कुछ अनन्य मित्र मिले और रचनात्मक कार्य की शुरुआत हुई।

चंपारण की कथा हमने ब्योरेवार देखी, क्योंकि वह भारत में गांधी जी द्वारा किया गया पहला सत्याग्रह था।

चंपारण की जांच और रचनात्मक काम चालू थे, उसी दौरान गुजरात में दो और सत्याग्रह हुए। एक अहमदाबाद के मिल मजदूरों का सत्याग्रह और दूसरा खेड़ा के किसानों का सत्याग्रह।

अहमदाबाद के मिल मजदूर

1917 में अहमदाबाद में प्लेग फूट पड़ा। उस समय मजदूर शहर छोड़कर गांव में न भाग जाए, इसके लिए मालिकों ने 'प्लेग बोनस' दिया। इस महामारी का जब भय टला, तब तक महंगाई इतनी अधिक बढ़ गई कि दाल, चावल, तेल, नमक, गुड़ जैसी जीवनोपयोगी वस्तुओं की कीमतें दुगुनी से भी अधिक हो गईं। जब प्लेग खत्म हुआ, तो मालिक 'प्लेग बोनस' खत्म करने का विचार करने लगे। इससे मजदूरों में खलबली मची। उन्होंने महंगाई भत्ता में वृद्धि की

मांग की। इस बारे में खींचतान बढ़ती देखकर अहमदाबाद के कलेक्टर ने गांधी जी को मिलने के लिए बुलाया। इसके पहले ही मिल-मालिकों की ओर से अंबालाल साराभाई गांधी जी से मध्यस्थता करने की प्रार्थना कर चुके थे। मजदूरों का नेतृत्व करने वाली अंबालाल की बहन अनसूयाबहन थी। मजदूर नेता तो चाहते ही थे कि गांधी जी इस प्रश्न में रुचि लें। गांधी जी ने प्रश्न के समाधान के लिए पंच-प्रथा शुरू करने की सलाह दी। परंतु इसी गफलत में एक-दो मिलों में हड़ताल हो गई। इससे मालिक तालाबंदी घोषित करने के लिए तत्पर हो गए। मामला और अधिक बिगड़ा। वृद्धि कितनी प्रतिशत दी जाए—इस बारे में उलझन पैदा हो गई। मालिकों की तैयारी 20% तक वृद्धि करने की थी। मजदूर नेताओं ने इकट्ठा होकर आम इस्तेमाल की वस्तुओं की कीमतों की गणना की। उन्हें लगा कि 35% वृद्धि होनी चाहिए। इस बैठक में किसी ने सुझाव दिया कि 50% की मांग की जाएगी तो मालिक खींचतान के बाद 35% पर आ ही जाएंगे। परंतु गांधी जी की सत्यनिष्ठा इसे कैसे स्वीकार करती ? उन्होंने कहा कि पूरा हिसाब करके देखो, फिर यदि 35% उचित लगे तो हमें 36% मांगना नहीं है और 34% स्वीकारना नहीं है। मजदूरों ने हड़ताल की। गांधी जी ने उन्हें सलाह दी कि शांति को कभी भंग नहीं करना। जो काम पर जाना चाहें, उनके साथ जबरदस्ती नहीं करनी। मजदूर भीख में मिला अनाज न खाएं और हड़ताल चाहे जितनी लंबी चले, तब भी दृढ़ रहें। अपनी मांग न स्वीकारी जाए अथवा मांग उचित है या नहीं, इसकी जांच के लिए जब तक पंच नियुक्त न हों, तब तक हड़ताल जारी रखने का निर्णय किया गया।

मजदूरों की सभा रोज साबरमती नदी के किनारे एक बबूल के पेड़ के नीचे होती थी। गांधी जी उसमें मजदूरों को धीरज न खोने और शांति बनाए रखने की सीख देते। मालिकों की ओर से अंबालाल साराभाई गांधी जी से लगभग रोज मिलते, परंतु वे भी

अपनी बात पर अडिग थे। हड़ताल लंबी चली, इसलिए मजदूरों की कठिनाई बढ़ती गई। कुछ को तो खाने के भी लाले पड़ने लगे। गांधी जी के साथी चालों में जाकर मजदूरों को निर्णय पर टिके रहने के लिए समझाने लगे। एक दिन एक साथी कहीं से सुनकर ऐसी सूचना लाया कि कुछ मजदूर कहते हैं कि अनसूयाबहन और गांधी जी को कहां भूखा रहना पड़ता है ? ये तो मोटरगाड़ी में घूमते हैं। हम कितने दिनों तक यहां कठिनाई भोगें ? गांधी जी का हृदय यह बात सुनकर मानो चिर गया। साबरमती नदी की सभा में उन्होंने उस दिन घोषित किया कि मजदूरों को जब तक मांगी गई 35% की वृद्धि नहीं मिलेगी, तब तक वे न खाना खाएंगे, न मोटर का उपयोग करेंगे। इसका प्रभाव बिजली की तरह हुआ। सभा में हजारों लोग उपस्थित थे। उनकी आंखों में पानी आ गया। वे गांधी जी की आत्मा को समझ पाए। उनमें चेतना जगी। अपनी प्रतिज्ञा के पालन में उन्हें बल मिला।

गांधी जी को भी विश्वास हुआ कि हिंदुस्तान में धर्म का लोप नहीं हुआ है। लोग आत्मा को पहचान सकते हैं। मालिकों में से कुछ को गांधी जी के उपवास नाटक जैसे लगते थे। परंतु अंबालालभाई जैसे व्यक्ति रोज-रोज गांधी जी के पास आकर उन्हें समझाने का प्रयास करते थे। कुछ मालिकों ने कहा कि गांधी जी की खातिर इस बार हम 35% महंगाई भत्ता दे दें, परंतु आईंदा से हमारे और मजदूरों के बीच कोई न आए। गांधी जी उनसे कहते थे, "मुझ पर दया करके नहीं, बल्कि मजदूरों की प्रतिज्ञा का सम्मान करके उन्हें न्याय प्रदान करने के लिए निर्णय कीजिए।" गांधी जी के मन में यह आशंका थी कि उनके उपवास से मालिकों पर नैतिक दबाव पड़ता है। इसलिए उन्होंने कहा कि इस प्रश्न के बारे में यदि पंच नियुक्त करने की बात स्वीकार की जाती है तो फिर पंच जो भी कहेगा, उतने प्रतिशत मजदूर स्वीकार कर लेंगे। इस बात से समझौते का रास्ता निकला। प्रश्न पंच के सुपुर्द करना तय हुआ।

मजदूरों की प्रतिज्ञा टिकाए रहने के लिए पहले दिन 35%, दूसरे दिन मालिकों के कहे अनुसान 20% और तीसरे दिन दोनों पक्षों द्वारा नियुक्त पंच जितना निश्चित करें, उतना प्रतिशत देने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। पंच को जांच के लिए तीन महीने की अवधि दी गई और जांच पूरी हो तब तक 27.5% वृद्धि मिले ऐसा प्रबंध किया गया। संघर्ष कुल बाईस दिन चला।

गांधी जी ने जब उपवास किए, तब अहमदाबाद के विद्वानों में से श्री आनंद शंकर ध्रुव ने इन उपवासों के औचित्य के बारे में शंका प्रकट की। मालिकों ने पंच के रूप में उन्हीं का नाम सुझाया। श्री ध्रुव की प्रामाणिकता में विश्वास रखने वाले गांधी जी ने यह नाम तुरंत स्वीकार कर लिया।

श्री आनंद शंकरभाई ने पूरी जांच के बाद फैसला दिया कि 35% वृद्धि की मजदूरों की मांग उचित है। 27.5% के हिसाब से जो राशि दी गई थी, उन दिनों की भी शेष राशि मजदूरों को दी जाए—ऐसा भी उन्होंने कहा। इस सत्याग्रह के अंत में मजदूरों की मांग पूरी हुई। इतना ही नहीं, अपितु सदा के लिए अहमदाबाद में विवाद के प्रश्न पंच-फैसले से हल करने की परंपरा स्थापित हुई, जो साठ वर्ष बाद भी बरकरार है। इससे मालिक-मजदूरों के प्रश्नों को हल करने का शांतिपूर्ण और सुलहपूर्ण मार्ग निकला। उपवास से प्रतिपक्ष पर अनुचित दबाव तो नहीं पड़ता, यह विचारने के लिए गांधी जी कितने सजग थे, यह प्रकट हुआ।

खेड़ा सत्याग्रह

लगभग इसी अवधि में गुजरात ने यह दूसरा सत्याग्रह देखा। गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से अन्याय का प्रतिकार करने की एक नई तरकीब लेकर आए। इसे देखकर देश में जगह-जगह कार्यकर्ताओं का समूह गांधी जी की ओर केंद्रित हुआ। समूचे देश में कितनी

ही जगह अनेक प्रकार के अन्याय के किस्से होते थे। अन्याय का सामना करने के इच्छुकों का मन स्वाभाविक तौर पर गांधी जी की ओर आकर्षित होता। इस तरफ गांधी जी को सत्याग्रह के लिए अवसर खोजने जाना नहीं पड़ता। अन्याय की ऐसी घटनाएं ही जैसे सत्याग्रह की खोज करने वाले गांधी जी के पास दौड़ती आतीं।

खेड़ा जिले के किसानों की ओर से श्री शंकरलाल द्वारकादास पारीख ने, जब गांधी जी चंपारण में थे, उनके पास जाकर शिकायत की थी। किसानों को दुख यह था कि 1917 के वर्ष के चौमासे में अधिक वर्षा के कारण जिले में ज्यादातर फसल चौपट हो गई थी। सामान्य तौर पर वहां प्रति वर्ष तीस इंच वर्षा होती थी, किंतु उस वर्ष लगभग सत्तर इंच वर्षा हुई। इसके अलावा, यह वर्षा दशहरे के बाद भी चालू रही, इससे किसानों को दूसरी फसल बोने का मौका नहीं मिला। एक तो बरसात की फसल नष्ट हो गई थी, ऊपर से इस वर्ष चूहों का प्रकोप भी बढ़ गया था। जमीन के लगान के बारे में सरकारी कानून ऐसा था कि जिस वर्ष छह आने से कम फसल हो, उस वर्ष आधा लगान स्थगित किया जाए, फसल चार आने या इससे भी कम हो, तो लगान पूरा का पूरा स्थगित रखा जाए, और लगातार दूसरे वर्ष भी फसल निष्फल हो जाए, तो पिछले वर्ष स्थगित रखी गई लगान की राशि माफ कर दी जाए। जिले के बहुत-से किसानों को इस नियम की जानकारी नहीं थी। कुछ का ख्याल यह था कि जब अकाल पड़े, तभी आम लगान स्थगित या माफ होता है, हरा अकाल हो तो नहीं। सरकार के अधिकारी इस अज्ञानता का लाभ उठाकर उनसे लगान वसूल करने लगे। साथ ही, लगान वसूल करते हुए पटवारी गाली-गलौच भी करते और डराते-धमकाते।

कठलाल गांव के श्री मोहनलाल पंड्या ने किसानों को लगान न देने की सलाह दी और शंकरलाल पारीख द्वारा उन्होंने मुंबई की विधानसभा के सदस्य ना. विट्ठलभाई तथा गोकुलदास परमार को

स्वयं जांच करने के लिए आने का निमंत्रण दिया। किसानों की अर्जी तैयार की गई। बाईस हजार किसानों के हस्ताक्षरों वाली यह अर्जी मुंबई सरकार को भेजी गई और उसकी प्रति उपरोक्त दो विधायकों तथा गांधी जी को भेजी गई। गांधी जी ने चंपारण से सलाह दी कि सभाओं में मर्यादा का उल्लंघन न हो, बातचीत विवेकपूर्वक हो। भाषा या कार्यों में अति कदापि न हो। दोनों विधायकों ने लगभग बीस गांवों का दौरा करके परिस्थिति को स्वयं देखा। किसानों की अर्जी की एक प्रति गुजरात सभा को भी भेजी गई थी। इस संस्था के अध्यक्ष उस समय गांधी जी थे। दोनों विधायकों ने कलेक्टर से भेंट की। उसके बाद कुछ लगान स्थगित रखने की घोषणा हुई। यह राशि पूरे लगान की केवल 7% ही होती थी। इसकी भी अधिकांश किसानों को जानकारी नहीं थी। कुछ अधिकारी तो चाहते थे कि लोगों द्वारा कोई आंदोलन शुरू हो तो उस आंदोलन को दबा दें—ऐसा करके वे सरकार के प्रिय बनना चाहते थे। ब्रिटिश शासन के दौरान ऐसे अफसरों की कद्र भी होती थी। पटवारियों की ऐसी परेशानी को देखकर खेड़ा जिले के होमरूल लीग के सदस्यों ने इसकी जांच की। दैयप गांव के किसानों ने कार्यकर्ताओं से कहा कि गांवों में कहर ढाया जा रहा है। दो दिन से लोगों का खाना-पीना हराम है। पटवारी मां-बहन की गाली के बिना बात नहीं करता। घर बेचो, गहने बेचो पर सरकार का पैसा भरो—ऐसी धमकी देता है। पत्र द्वारा गांधी जी के पास यह शिकायत पहुंची, तब उन्होंने लिखा कि पटवारी के जुल्मों की बात तुम भूलना नहीं और भाई मावलंकर (जो उस समय गुजरात सभा के सचिव थे) को भूलने देना नहीं। सरकारी अफसरों के व्यवहार का विवरण प्रकट करना आवश्यक है। जनता के नेताओं ने किसानों पर हुए जुल्म का वर्णन करती पत्रिकाएं प्रकाशित कीं। सरकार ने अफसरों को वसूली के मामले में सख्ती करने की हिदायत दी। पुलिस, पटेल या मतदाता ही लगान न भरें, तो उन्हें

एक सप्ताह में नौकरी से हटाने की धमकी दी गई। यदि कोई लगान न भरने की सीख देता हो तो उसका नाम नोट करके, उसका लगान शेष हो तो चौथाई दंड के साथ वसूल करने की हिदायत दी गई। फसल होने के बावजूद जो कोई लगान न भरते हों तो उनकी चल संपत्ति जब्त करने के आदेश प्राप्त करने में विलंब न करने की सूचना दी गई।

1918 के जनवरी में गांधी जी अहमदाबाद आए, तब खेड़ा जिले के नेताओं और गुजरात सभा के सदस्यों ने उनके साथ इस समस्या के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की। गांधी जी ने ऐसा आग्रह किया कि गुजरात सभा में यदि सर्वसम्मति हो, तभी उसे इस मामले में पड़ना चाहिए। सभा में एक को छोड़कर सभी सदस्य सहमत थे। जिनकी सहमति नहीं थी, उन्होंने प्रस्ताव का विरोध न करने की बात स्वीकारी। गुजरात सभा से गांधी जी ने मांग की कि उसके वरिष्ठ कार्यकर्ताओं में से किसी एक को खेड़ा जाना चाहिए और लड़ाई पूरी होने तक वहीं रुकना चाहिए। वल्लभभाई पटेल इस कार्य हेतु जाने के लिए तैयार हुए। इन लोगों ने लड़ाई के महीनों के दौरान नडियाद को अपना मुख्य केंद्र बनाया। गांधी जी सप्ताह में एक बार साबरमती आश्रम हो आते। उन्हें बीच-बीच में देश से बाहर भी जाना पड़ता था। तब लड़ाई के संचालन की मुख्य जिम्मेवारी वल्लभभाई पर आन पड़ती। वल्लभभाई के अनुशासन का आग्रह ऐसा था कि जब तक गांधी जी उपस्थित होते, तब तक वे एक शब्द भी बोले बगैर स्वयंसेवक के रूप में काम करते रहते। परंतु वे न होते, तब पूरी जिम्मेवारी स्वयं उठा लेते।

गुजरात सभा ने इस प्रश्न के बारे में कमिश्नर प्रेट से मिलने की मांग की। कमिश्नर ने केवल सभा के सचिवों के साथ बातचीत की। दूसरों से मिलने की भी स्वीकृति नहीं दी। सचिवों के साथ बातचीत में भी तिरस्कारपूर्ण व्यवहार रखा। सभा द्वारा प्रकाशित पत्रिका वापस न ली गई तो सभा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया

जाएगा—इस हद तक धमकी दी। गांधी जी ने जब सरकार के जोर-जुल्म की बात सुनी, और यह देखा कि सरकार किसानों को झूठा ठहरा रही थी, और इधर किसान अपने अधिकार पाने के लिए कठिनाई सहन करने को तैयार हैं तथा गुजरात सभा उनके साथ खड़ी रहने को तैयार है ऐसा जाना, तब उन्होंने इस प्रश्न में सीधे-सीधे शामिल होना तय किया। गवर्नर से मिलकर उन्होंने पूरे मामले की जांच करने की मांग की, परंतु गवर्नर ने उसे स्वीकार नहीं किया।

नडियाद जाकर गांधी जी ने कार्यकर्ताओं की टुकड़ियां बनाकर एक सप्ताह में जिले के 600 गांवों में से 425 गांवों का ब्योरा प्राप्त कर लिया। गांधी जी ने कलेक्टर को पत्र लिखकर लगान की दूसरी किस्त की पूरी राशि स्थगित करने की मांग की। परंतु यह प्रार्थना भी बहरे कानों से टकराने वाली साबित हुई। 26 मार्च 1918 के दिन नडियाद में एक विशाल जनसभा के आयोजन के साथ सत्याग्रह की शुरुआत की गई। लगभग 200 किसानों ने कष्ट सहकर भी लगान न भरने की प्रतिज्ञा की। गांधी जी ने समझाया कि "जिन्होंने प्रतिज्ञा नहीं ली वे चालकविहीन जहाज की भांति इधर-उधर टकराते हैं और अंत में नष्ट हो जाते हैं।" दूसरे दिन से प्रतिज्ञा लेने वालों की संख्या में वृद्धि होने लगी। जिन गांवों में चार आने फसल भी नहीं हुई, उन गांवों के किसानों पर लगान न भरने के बारे में केस चलाने में सरकार गलत सिद्ध होती थी और इससे किसानों को सजा दिए बगैर छोड़ देती थी।

कमिश्नर मिस्टर प्रेट के मन में आया कि किसानों को वह स्वयं मिलकर समझाए। परंतु सभा के आयोजन में उसे गांधी जी की मदद मांगनी पड़ी। गांधी जी स्वयं उसकी सभा में उपस्थित न रहे, परंतु उन्होंने वल्लभभाई को उपस्थित रहने को कहा। सभा में मिस्टर प्रेट ने गलत बयान दिए, जिसके बारे में वल्लभभाई ने स्पष्टीकरण दिया। सभा समाप्ति पर किसान गांधी जी के पास

आए। गांधी जी ने उन्हें प्रतिज्ञा के महत्त्व के बारे में फिर से समझाया।

गांधी जी ने अब भी समाधान के प्रयास छोड़े नहीं थे। बातचीत के लिए मिलने की मांग के उत्तर में मिस्टर प्रेट ने लिखा :

"अपने सभी हथियार छोड़कर बातचीत के लिए आएं तो आपके लिए मेरे दरवाजे खुले हैं। मेरे हाथ तो कानून और प्रशासन से बंधे हैं।"

गांधी जी ने उत्तर में लिखा :

"मैं तो सत्याग्रही हूं। अपने हथियार तो क्या अपना सर्वस्व भी मैं दूसरी तरह से अर्पण कर दूं, परंतु सिद्धांत तो मृत्युपर्यंत भी नहीं छोड़ सकता।"

मई के महीने में सरकार ने जब्तियों का दौर बढ़ा दिया। अनेक असामियों की जमीन जब्त कर ली गई। अनेकों के घर जाकर जब्ती करके लगान वसूल करने का प्रयास किया गया। कानूनी तौर पर जिसकी जमीन जब्त होती है, उसे लगान नहीं भरना पड़ता और जिसका लगान वसूल न हो, उसकी जमीन जब्त नहीं होती।

इन घटनाओं के बावजूद भी लोगों ने हिम्मत बनाए रखा। वे जानवर, कार, गृहस्थी का सामान, गहने, बर्तन आदि जब्त होने देते। स्त्रियां भी इस विरोध में उत्साहपूर्वक भाग लेने लगीं। इसे देखकर मुंबई के समाचार पत्रों ने उनकी बहादुरी की प्रशंसा करते हुए लेख लिखे। एक अवसर पर तो स्वयं कलेक्टर ने कहा कि "जिस तरह प्रजा लड़ रही है, वह प्रसंशा योग्य है।"

गांधी जी उत्तरसंडा गए थे। वहां नडियाद तहसील के तहसीलदार उनके निवास स्थान पर जाकर मिले और कहा कि यदि अच्छी स्थिति वाले किसान लगान भर दें तो गरीब किसानों का लगान स्थगित रखा जाएगा। गांधी जी ने यह बात लिखित रूप में मांगी। तहसीलदार ने यह बात लिखकर दे दी। गांधी जी ने तुरंत कलेक्टर

को पत्र लिखा कि अगर ऐसा आदेश तुरंत पूरे जिले में जारी किया जाए तथा चौथाई दंड माफ किये जाएं तो हम यह लड़ाई खत्म कर देंगे। गांधी जी की ये दोनों बातें कलेक्टर ने मान ली और उसके अनुरूप आदेश जारी कर दिए। इसलिए 6 जून के दिन गांधी जी और वल्लभभाई के हस्ताक्षर वाली पत्रिका से लड़ाई बंद करने की घोषणा की गई।

गांधी जी को बाद में मालूम हुआ कि इस प्रकार की छूट का आदेश तो 25 अप्रैल को ही जारी हो चुका था और उसका अमल ठीक से हो, ऐसी विज्ञप्ति 22 मई के दिन जारी की जा चुकी थी। फिर भी आदेश की जानकारी कार्यकर्ताओं को नहीं दी गई थी और जब्ती का काम इस आदेश के बाद भी पूरे जोर से जारी रखा गया था। लड़ाई के अंतिम भाग में सरकारी अफसरों ने धोखा दिया जिससे गांधी जी और वल्लभभाई ने लड़ाई के अंत को माधुर्यरहित बताया।

खेड़ा जिले के इस सत्याग्रह से गुजरात के किसानों को पहली बार स्वयं कष्ट सहन कर न्याय प्राप्त करने की गांधी जी की पद्धति की पहचान हुई। किसान यदि एक बार असहयोग की इस पद्धति के मर्म को समझ जाएं तो कष्ट सहन करके और त्याग करके भी अपनी टेक पर अडिग रह सकते हैं—इसका गांधी जी और उनके माध्यम से पूरे देश को विश्वास हो गया। एक-दो प्रसंगों में व्यक्तिगत रूप से कष्ट सहन कर न्याय प्राप्त किया गया हो, ऐसे किस्से तो इतिहास में पहले भी हुए हैं। परंतु एक जिले के समग्र किसान वर्ग ने सामूहिक रूप में ऐसा प्रयास किया हो, यह पहला ही अवसर था। इस लड़ाई से गांधी जी ने वल्लभभाई की शक्ति पहचानी। वल्लभभाई ने गांधी जी का सच्चाई से भरा सरल, किंतु मजबूत जीवन देखकर प्रेरणा प्राप्त की और तब से दोनों के बीच मैत्री की जो गांठ बनी, वह तमाम मतभेदों के बावजूद जीवनपर्यंत टिकी रही। इस लड़ाई में श्री मोहनलाल पंड्या, शंकरलाल पारीख

और रविशंकर महाराज जैसे लोगों ने आगे बढ़कर भाग लिया।

सत्याग्रह के शास्त्र में लगान न भरने और इसके कारण आ पड़ी सजा या कठिनाई सहन करने का साधन प्रयुक्त हुआ। इस लड़ाई के दौरान श्री शंकरलाल पारीख की थोड़ी-सी जमीन का लगान उनके काश्तकार ने श्री पारीख की जानकारी के बगैर भर दी थी। इसकी पर्याप्त सावधानी न रखने की भूल के लिए प्रायश्चित के तौर पर गांधी जी ने यह जमीन गांव को दे देने का सुझाव दिया था, जिसे श्री शंकरलालभाई ने विनम्रतापूर्वक शिरोधार्य किया। इस तरह सत्याग्रह सत्याग्रही के लिए शुद्धि का भी प्रयोग सिद्ध हुआ।

असहयोग

अब हम देशव्यापी सत्याग्रह के दहलीज तक आ पहुंचे हैं। गांधी जी देश में आए उसके बाद के पहले तीन वर्षों में ही चंपारण, अहमदाबाद और खेड़ा की सत्याग्रह की तीन लड़ाइयां वे लड़ चुके थे। 1917 और 1918 के वर्षों में इस लड़ाइयों की सफलता ने उन्हें पूरे देश में लोकप्रियता प्रदान की। जैसा बोले, वैसा करने के उनके चरित्र को जनता अंतर की गहराई से पहचान गई थी। सत्याग्रह जैसे साधन का देशव्यापी प्रयोग करने का अवसर भी उसके बाद शीघ्र ही मिल गया। ऐसे 'अहिंसक असहयोग' के आंदोलन ने गांधी जी को पूरे देश में ऐसा स्थान दिलाया, जो सफलताओं व असफलताओं के बीच भी रंचमात्र हिले-डुले बगैर जनता के हृदय में अडिग रूप से स्थापित हो गया। देश की आजादी की लड़ाई में अनेक छोटी-मोटी लहरों के बीच भी तीन महातरंगें आई थीं, जिसने पूरे देश के इतिहास को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया। 'अहिंसक असहयोग' का आंदोलन उसमें से पहली महातरंग थी। इस बात पर आएं उससे पहले हम उसकी भूमिका जांचकर समझ लें।

प्रथम विश्व युद्ध में भारत के लोगों ने अपने प्राणों का वीरतापूर्ण बलिदान दिया था। इसके अलावा, युद्ध के दौरान ब्रिटिश राजनेताओं ने 'पूरी दुनिया में स्वतंत्रता का झंडा फहराने' की इच्छा व्यक्त की थी। इन बातों की वजह से देश में ऐसी व्यापक अपेक्षा जाग उठी कि युद्ध में हुई विजय के फलस्वरूप अंग्रेज देश को स्वराज अथवा उससे मिलते-जुलते कुछ सुधार अवश्य प्रदान करेंगे। देश में प्रारंभ किए जाने वाले सुधारों के बारे में जब मिस्टर मोंटेग्यू और लार्ड चेम्सफोर्ड की समिति बनी, तब इसकी रिपोर्ट के बारे में बड़ी आशाएं थीं। इस कमिटी की रिपोर्ट प्रत्येक देश में स्वतंत्रता का कैसा अधिकार है यह बताने में तो कोई कमी नहीं रखती थी, परंतु स्वतंत्रता प्रदान करने में आज कैसी कठिनाइयां हैं यह बताने में भी उसका लेखन-कौशल दिखाई पड़ता था।

मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के बारे में देश में दो तरह के मत थे। कुछ इसके पिछले भाग का विचार करके इसको अस्वीकार करने के पक्ष में थे, जबकि कुछ अन्य पहले भाग की समझदारी भरी बातों के आधार पर और अधिक मांग करने के लिए इसे आधार बनाना चाहते थे।

रॉलेट कानून

लगभग इसी समय सरकार ने सर सिडनी रॉलेट के नेतृत्व में एक तीन-सदस्यीय समिति क्रांतिकारी आंदोलन और उससे निपटने के कदमों पर विचार करने के लिए नियुक्त की। इस समिति की रिपोर्ट ने देश में भारी असंतोष जगाया। सामान्य भावना यह थी कि गिने-चुने क्रांतिकारियों की गतिविधियों का बहाना बनाकर रॉलेट समिति सरकार को ऐसे अधिकार देना चाहती है कि आम नागरिकों के प्राथमिक अधिकार भी छिन जाए।

1918 में रॉलेट समिति का ब्योरा और उसकी सिफारिश के

अनुसार तैयार बिल के प्रति देश के राजनैतिक नेताओं के मन में भारी उत्तेजना थी। गांधी जी उस समय एक गंभीर बीमारी से बड़ी मुश्किल से उठे थे। परंतु यह रिपोर्ट देखकर वे चौंक पड़े। शंकरलाल बैंकर ने सुझाया कि इस बारे में कुछ करना चाहिए। गांधी जी ने बल्लभभाई से बात की। उन्होंने एक छोटी-सी सभा बुलाई। यदि रॉलेट समिति के सुझाव के अनुसार कानून बनाया जाता है तो उसके सामने सत्याग्रह किया जाए, यह निश्चय किया गया। सभा में आए लगभग बीस सदस्यों ने इसका विरोध करने के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किए। कोई भी कार्यरत संस्था सत्याग्रह जैसा नया शस्त्र उठा ले, इसे असंभव मानकर गांधी जी की सलाह से 'सत्याग्रह सभा' की स्थापना हुई। इसके सदस्य मुख्यतः मुंबई के ही थे। प्रतिज्ञा-पत्र पर बहुत-से हस्ताक्षर होने लगे और खेड़ा की लड़ाई की तरह ही पत्रिकाएं निकलीं और जगह-जगह सभाएं होने लगीं। रॉलेट समिति के विरोध में एक तरफ आंदोलन बढ़ता गया और दूसरी तरफ समिति की सिफारिशों पर अमल करने के बारे में सरकार भी दृढ़ होती गई। गांधी जी ने वायसराय लार्ड विलिंग्डन से मिलकर इसका अमल रोकने का अनुरोध किया। निजी और सार्वजनिक पत्र भी लिखे, पर कुछ न हुआ। सत्याग्रह के अलावा कोई चारा नहीं है गांधी जी को ऐसा स्पष्ट दिखाई दिया। गांधी जी कमजोर स्वास्थ्य के बावजूद मद्रास (चेन्नई) गए। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने तमिल लोगों के बीच काम किया था। इसलिए उन्हें दक्षिण के प्रदेश घर जैसे ही लगते थे।

गांधी जी को बुलाने का आग्रह करने वाले चक्रवर्ती राजगोपालाचारी थे, जिनके साथ पहली ही बार उनका परिचय हुआ था। परंतु उस समय बंधी स्नेह-गांठ मानो पूरे जीवन भर टिकने वाली थी। सत्याग्रह किस तरह किया जाए इस बारे में गांधी जी कोई स्पष्ट धारणा नहीं बना पाए थे। परंतु इसी बीच समाचार पत्रों में आया कि बिल कानून के रूप में गजट में प्रकाशित हुआ है।

बिल का विचार करते-करते गांधी जी देर रात को सोए। सवेरे अर्ध निद्रा में उन्हें विचार आया और राजगोपालाचारी जी को बुलाकर उन्होंने कहा कि इस कानून के जवाब में हम पूरे देश में हड़ताल का निर्देश दें। सत्याग्रह धर्म कार्य की लड़ाई है। धर्म कार्य शुद्धि से शुरू होना चाहिए। इसलिए उस दिन सभी उपवास करें और काम बंद रखें, ऐसा भी निर्देश दें। मुसलमान भाई रोजा के अलावा और अधिक उपवास नहीं करते, इसलिए उनसे चौबीस घंटे के उपवास की ही सिफारिश की जाए। राजगोपालाचारी को यह सुझाव बहुत पसंद आया। फिर जिन मित्रों को बताया, उन सभी ने इसे खुशी से मान लिया।

1919 के अप्रैल महीने की छठी तारीख को यह कार्यक्रम करना तय हुआ। पूरे देश में, शहरों और गांवों में हड़तालें हुईं। स्वयं गांधी जी को भी यह दृश्य अद्भुत लगा। हड़ताल की तारीख पहले 30 मार्च तय हुई थी। परंतु बाद में तैयारी के दिन कम पड़ेंगे, यह सोचकर इसे 6 अप्रैल कर दिया गया। दिल्ली में 30 तारीख को ही हड़ताल हो गई। वहां स्वामी श्रद्धानंद जी को जामा मस्जिद में भाषण देने के लिए निमंत्रित किया गया। सभा के बाद जुलूस निकला। जुलूस को रोकने के लिए पुलिस ने बंदूकें तान लीं। स्वामी जी ने अपनी छाती खोलकर कहा कि हिम्मत हो तो मेरे सीने पर गोली चलाओ। पुलिस ठिठक गई। परंतु पीछे से इसी जुलूस पर गोलीबारी हुई। स्वामी जी ने गांधी जी को दिल्ली बुलाया।

पंजाब में भी दिल्ली की भांति ही रॉलेट कानून के विरोध में निश्चित की गई तिथि 6 अप्रैल से पहले ही प्रदर्शन हो गए थे। अमृतसर से डॉ. सत्यपाल और श्री किचलू गांधी जी को बार-बार तार (टेलीग्राम) करके बुला रहे थे। गांधी जी ने छठी अप्रैल मुंबई में बिताई और फिर दिल्ली होकर पंजाब जाने का कार्यक्रम बनाया।

छह अप्रैल के कार्यक्रम को पूरे देश की तरह मुंबई में भी अभूतपूर्व सफलता मिली। सुबह के प्रहर में हजारों लोग चौपाटी पर

स्नान करने गए और वहां से माधवबाग जाने के लिए जुलूस निकाला। जुलूस में स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी शामिल थे। मुसलमान बंधु भी अच्छी संख्या में शामिल हुए। इसी जुलूस में से मुसलमान भाई नेताओं को एक मस्जिद में ले गए, जहां सरोजिनी नायडू और गांधी जी ने भाषण दिए। उस दिन मुंबई में संपूर्ण हड़ताल रही। लोगों ने सविनय कानून भंग करने में काफी उत्साह दिखाया। सविनय भंग करने के लिए सरकार ने जिन्हें प्रतिबंधित घोषित किया था, ऐसी गांधी जी की 'हिंद स्वराज' और 'सर्वोदय' नामक दो पुस्तकों को सार्वजनिक तौर पर बेचकर कानून भंग करने का निश्चय किया गया था। कार्यकर्ताओं ने उत्साहपूर्वक खुलेआम इन पुस्तकों को बेचा और लोगों ने उन्हें मुंहमांगी कीमत चुकाकर खरीदा। स्वयं गांधी जी और सरोजिनी नायडू भी पुस्तकें बेच रहे थे। इस अवसर के लिए विशेष रूप से मुद्रित तमाम पुस्तकें बिक गईं। इन पुस्तकों को बेचना तो अपराध था ही, इन्हें खरीदना भी अपराध था। खरीदारों को यह समझाया जाता था, परंतु जहां विनयपूर्वक कानून-भंग ही करना था वहां अपराध करने का भय कैसा? दूसरे दिन गांधी जी महादेवभाई के साथ दिल्ली होकर अमृतसर जाने के लिए निकले। दिल्ली नजदीक आने पर पलवल स्टेशन पर गाड़ी को रोककर गांधी जी को गिरफ्तार किया गया। महादेवभाई को दिल्ली जाकर स्वामी जी से मिलने और लोगों को शांत रहने के लिए समझाने की बात कहकर गांधी जी पुलिस के साथ गए। पुलिस उन्हें प्रथम श्रेणी में बिठाकर वापस मुंबई ले आई।

अब हम असहयोग आंदोलन तक आ पहुंचे हैं। इस आंदोलन द्वारा राष्ट्रीय महासभा अर्थात् कांग्रेस ने पहली बार अहिंसक लड़ाई का रास्ता पूरे देश के कार्यक्रम के रूप में स्वीकारा और स्वाभाविक तौर पर इस आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए कांग्रेस ने गांधी जी से प्रार्थना की। ऐसा होने से पहले ही कांग्रेस की दो बैठकों में व्यापक विचार-विमर्श हुआ था और अब पर्याप्त मंथन

के बाद ही उसमें से देश को अहिंसक असहयोग का मक्खन प्राप्त हुआ था। परंतु इस मंथन की बात थोड़ी बाद में करेंगे।

आंदोलन के उद्देश्य–पंजाब

असहयोग के राष्ट्रीय आंदोलन के तीन उद्देश्य थे : पंजाब के जुल्म, खिलाफत का प्रश्न और स्वराज की मांग। पहले हम इन तीन मुद्दों को थोड़ा विस्तार से देख लें।

गांधी जी को पंजाब जाते समय रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने पंजाब जाना इसलिए स्वीकार किया था क्योंकि वहां से भारी जुल्म ढाए जाने के समाचार आ रहे थे। उनकी गिरफ्तारी के बाद भी वहां अनेक प्रकार के जुल्म होते रहे। रॉलेट कानून के विरोध में आयोजित सभाओं पर पुलिस ने अंधाधुंध आक्रमण किए थे। शांत जुलूसों पर जरा भी भड़काए जाने वाले कारणों के बिना भी पुलिस टूट पड़ती और भीड़ भी गुस्से में आकर हिंसा या तोड़-फोड़ के रास्ते पर चल पड़ती। तब तक पंजाब के लोगों को अहिंसा की शिक्षा नहीं मिली थी। उधर अत्याचारों की कहानी दर्द से भरी थी।

यों भी पंजाब की जनता अपने शौर्य और स्वाभिमान के लिए प्रसिद्ध थी। पूरे देश में शायद पंजाबी ही सबसे बड़ी संख्या में फौज में भरती होते होंगे। अंग्रेजों का साम्राज्य हिंदुस्तान पर स्थापित हुआ, तब सबसे अंत में विजित होने वाले लोग पंजाब के सिक्ख ही थे। आजादी की हवा इन्हें लगे, यह अंग्रेजों को बिलकुल गवारा नहीं था। क्रांतिकारियों में गदर पार्टी के लोगों का देशप्रेम प्रसिद्ध था। इनमें से अनेक वीरों को बरसों तक देशनिकाला दिया गया था। क्रांतिकारी जहाज 'कोमागाटामारू' में सफर करने वाले यात्रियों में भी अधिकांश पंजाबी थे।

गरम दल के एक अग्रणी नेता लाला लाजपतराय का पंजाब

में खासा असर था। वे प्रांत भर में भाषण देते और लोगों में राजनीतिक चेतना भरते। ऐसी वीरता जुल्मी अधिकारी कैसे बरदाश्त करते? पंजाब का गवर्नर सर माइकल एडवायर, कांग्रेस के आंदोलन की छूत पंजाब को न लगे, इस बारे में जरूरत से ज्यादा सचेत था। इसलिए उसने अपने सभी अधिकारियों को राजनैतिक आंदोलन करने वाली भीड़ के साथ सख्ती से काम लेने का इशारा किया था। गोरे अधिकारियों का तो पूछना ही क्या? उनके लिए तो मर्कट (बंदर) को मदिरापान-सा हुआ। बाद में पंजाब की घटनाओं की जांच के लिए नियुक्त सरकारी आयोग 'हंटर कमीशन' के सामने इन अधिकारियों द्वारा कबूली गई बातों के आधार पर हमें निम्नलिखित जानकारियां मिलती हैं :

1919 का कांग्रेस अधिवेशन अमृतसर में बुलाया गया था। अधिकारियों की इच्छा नहीं थी कि यह अधिवेशन उनकी भूमि पर आयोजित हो। इसलिए वहां के दो अग्रणी नेताओं सैफुद्दीन किचलू और डॉ. सत्यपाल को जिले के मजिस्ट्रेट ने मिलने के लिए बुलाया और वहीं से उन्हें किसी अज्ञात स्थल पर भेज दिया। यह समाचार जंगल में आग की तरह पूरे प्रदेश में फैल गया। लोग उनके बारे में जानने के लिए व्यग्र हो उठे। लोगों की भीड़ मजिस्ट्रेट के पास जाने लगी। शहर और सिविल लाइंस के बीच के रेलवे क्रासिंग के आगे इस भीड़ को फौजी चौकीदार ने रोका। भड़काए जाने पर लोगों ने पथराव शुरू किया, गोलीबारी हुई। एक-दो व्यक्ति घटना स्थल पर ही मारे गए और अन्य कई घायल हो गए। इससे लोग और भड़के। भीड़ गोलीबारी में मारे गए लोगों की लाश लेकर शहर की ओर वापस मुड़ी और रास्ते में नेशनल बैंक के मकान को आग लगा दी तथा यूरोपियन मैनेजर को मार डाला। भीड़ ने पांचेक व्यक्तियों की जान ली होगी और कितनी ही सार्वजनिक इमारतों को नुकसान पहुंचाया होगा। अधिकारियों ने बदला लेने का निश्चय किया। 10 अप्रैल को पूरा शहर फौज के

कब्जे में दे दिया गया। गुजरानवाला और कसूर में भी लोगों की भीड़ ने रेलवे की संपत्ति को नुकसान पहुंचाया। गुजरानवाला में भीड़ ने एक ट्रेन को घेर लिया। पुलिस ने एक बछिया को मारकर एक पुल पर लटका दिया था, उस पुल को नुकसान पहुंचाया गया। वहां के तार आफिस, पोस्ट आफिस और डाक बंगले तथा एक चर्च और विद्यालय में लोगों ने आग लगा दी। लाहौर में भी गोलीबारी हुई थी और लोगों ने बदले में दंगे किए थे। प्रशासन ने अपने तौर पर दंगे भड़काए थे।

पूरे अमृतसर शहर में बिजली और पानी की आपूर्ति को काट डाला गया। रेलवे स्टेशनों पर तीसरे दर्जे का टिकट देना बंद कर दिया गया। दो व्यक्तियों से अधिक लोगों को एक साथ न घूमने देने के आदेश जारी हुए। यूरोपियन लोगों के अलावा शेष सबकी साइकिलें जब्त कर ली गईं। जिन्होंने अपनी दुकानें बंद रखी थीं, उन पर कठोर दंड करके दुकानें खुलवाई गईं। पार्लियामेंट में प्रस्तुत सरकारी रिपोर्ट के अनुसार अन्य स्थानों की तुलना में लाहौर में मार्शल लॉ का अमल ज्यादा सख्त था। कर्फ्यू तो तुरंत लागू कर दिया गया और रात्रि के आठ बजे के बाद कोई भी व्यक्ति सड़क पर दिखाई देता तो उसे गोली से उड़ा दिया जाता या खुले मंच पर कोड़े मारे जाते। वकीलों और उनके दलालों को परवानगी लिए बगैर शहर से बाहर जाने पर प्रतिबंध लगाया गया। जिनके घरों पर फौजी कानून के बारे में सूचना के कागज चिपकाये गए थे, उन्हें संभालकर रखने की जिम्मेदारी उन्हीं को सौंपी गई। कोई उसे फाड़े या उसके साथ छेड़छाड़ करे तो मकान-मालिकों को दंडित किया जाता। कालेज के विद्यार्थियों को दिन में चार बार फौज द्वारा निश्चित स्थान पर उपस्थिति दर्ज करवानी पड़ती। लंगरों को बंद करवा दिया गया। हिंदुस्तानी लोगों की कार एवं मोटरसाइकिलें जब्त करके फौज को काम में लेने के लिए दे दी गई। लोगों के घरों में से बिजली के पंखे उठाकर ब्रिटिश सिपाहियों के उपयोग के

लिए ले जाया गया। सार्वजनिक वाहनों को रोज दूर-दूर के स्थानों पर उपस्थिति दर्ज करवानी पड़ती। एक वृद्ध रात को आठ बजे अपनी गाय को खरहरा कर रहा था, उसे कर्फ्यू-उल्लंघन के अपराध में कोड़े मारे गए। तांगेवाले भी हड़ताल में शामिल हुए थे। उन्हें सबक सिखाने के लिए 3000 तांगों को जब्त किया गया।

कर्नल जॉनसन नामक एक अफसर ने कमीशन के सामने बयान दिया कि उसके आदेश अधिकतर पढ़े-लिखे वकील आदि लोगों को लक्ष्य करके ही जारी किये गए थे। उसका मानना था कि इस वर्ग में से ही आंदोलनकारी लोग पैदा होते हैं। 16 से 20 वर्ष के विद्यार्थियों को खास निशाना बनाया गया। इन लोगों को दिन में चार बार निश्चित स्थान पर उपस्थिति दर्ज कराने जाना पड़ता था। एक स्थान पर तो आग उगलती गर्मी में विद्यार्थियों को रोजाना 19 मील जाना पड़े—ऐसी व्यवस्था की गई थी। एक कालेज-भवन की दीवार पर मार्शल ला का कागज फाड़ दिया गया। इस वजह से उस कालेज के प्रिंसिपल सहित पूरे स्टाफ को गिरफ्तार कर लिया गया और तीन दिनों तक उन्हें बंद करके रखा गया। उन्हें किले के एक कोने में रखा गया और छत पर सुलाया गया।

गांव के एक मुखिया को केवल इसलिए पेड़ के साथ बांधकर नंगा करके कोड़े मारे गए ताकि लोग देखें और सबक लें। उस पर किसी प्रकार की कानूनी कार्यवाही नहीं की गई थी।

गुजरानवाला में लोगों की भीड़ पर बम फेंके गए। मशीनगनों से 255 राउंड गोलियां चलाई गईं। आयोग के समक्ष दावा यह किया गया कि जहां भीड़ देखी गई, वहां विमान से गोलीबारी की गई थी। यह गोलीबारी करने वाले अफसर लेफ्टीनेंट डॉडकिंस ने कहा कि जब तक भीड़ बिखर नहीं गई, तब तक वह गोलीबारी करता रहा। एक घर के सामने उसने लोगों की भीड़ देखी। इसलिए उस पर बम बरसाए, क्योंकि उसे विश्वास था कि यह भीड़ शादी या मौत की वजह से एकत्र नहीं हुई थी। मेजर कार्ली नामक एक

वायुसेना के अधिकारी ने ऐसे ही किसी वजह से जा रही भीड़ पर बम बरसाए थे। मेजर कार्ली ने स्वीकार किया कि दो सौ फुट की ऊंचाई से कौन अपराधी है और कौन निरपराध, यह तय नहीं किया जा सकता था। उसका एक मात्र उद्देश्य बम बरसाना था। गोलीबारी या बमवर्षा मात्र नुकसान करने के लिए नहीं थी। उसे आशा थी कि कुछ लोगों को खत्म कर देंगे तो फिर से लोगों की भीड़ जमा नहीं होगी। ऐसा करने के बाद वे विमान उड़ाकर वहां बम बरसा आए। उन्हें विश्वास था कि इसका नैतिक प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

गुजरानवाला, कसूर और शेखपुरा में लाहौर-अमृतसर की तरह कर्फ्यू ऑर्डर लगाया गया। हिंदुस्तानियों के यात्रा करने पर प्रतिबंध लागू किया गया। सार्वजनिक चौक पर मंच बांधकर लोगों को नंगा करके चमड़े के हंटर से कोड़े मारना, बड़ी संख्या में गिरफ्तारियां और खास अदालतों में तुरंत केस चलाया जाना—इस तरह की बातें लगभग सभी शहरों में हुईं।

कर्नल ऑ' ब्रीन को एक ऐसा आदेश मिला था कि हिंदुस्तानी लोग जब ब्रिटिश अफसरों से मिलें तब उन्हें सलाम करें, गाड़ी में से उतरकर खड़े रहें, छतरी ओढ़ रखी हो तो बंद कर दें। जांच समिति को कर्नल ने बताया कि लोगों को नए मालिक मिले हैं—यह जताने के लिए यह आदेश बहुत उपयोगी था। इन आदेशों का उल्लंघन करने वालों को कोड़े मारने या अन्य तरह की सजाएं दी जातीं। इसी कर्नल ने लोगों को पकड़कर 6-6 सप्ताह तक केस चलाए बिना बंद रखा। एक बार तो कई अग्रणी नेताओं को पकड़कर, उन्हें एक ट्रक में ठूंसकर, धूप में कई मील दूर ले जाया गया। फिर उन्हें शहर की सड़कों पर बेड़ियों के साथ चलाया गया। पूरे रास्ते कर्नल ऑ' ब्रीन नई-नई गिरफ्तारियां करता गया। मानो हिंदू-मुस्लिम एकता का मखौल उड़ाया गया हो—इस तरह हिंदुओं और मुसलमानों को एक बेड़ी में बांधा गया। इन कैदियों में एक

ऐसे वृद्ध सज्जन भी थे, जिन्होंने किंग जॉर्ज के आगमन के समय किंग जॉर्ज स्कूल को एक लाख रुपये का दान दिया था और युद्ध के समय राहत कोष में भी बड़ी रकम दी थी। ऑ' ब्रीन ने एक बूढ़े को किसी दोष या अपराध के बिना पकड़कर कब्जे में रखा और उसकी मदद के लिए आने वाले को गोली से उड़ा देने की धमकी दी। जांच में उसने स्वीकार किया कि उस बूढ़े का कोई अपराध नहीं था, परंतु वह बताता नहीं था कि उसके दो बेटे कहां गए हैं। इस कर्नल ने स्वीकार किया कि वह लोगों को पकड़कर, केस में लोग बचाव न कर सकें, इसके लिए दी गई तारीख से पहले ही केस चला देता था।

कसूर सब-डिविजन कैप्टन डोवटन के अधिकार-क्षेत्र में था। यहां सार्वजनिक फांसी का एक मंच खड़ा किया गया। हालांकि मालूम होता है कि इस पर किसी को फांसी नहीं दी गई। ऊपर के अधिकारी के आदेश से यह मंच हटा दिया गया। परंतु कई दिनों तक यह मंच बिजूका की भांति खड़ा-खड़ा लोगों में डर बैठाता रहा। स्टेशन के सामने एक बड़ा पिंजड़ा खड़ा करके लोगों को उसमें बंद किया जाता। लगभग सारे गांव के लोगों की, बंद किये गए व्यक्तियों की पहचान कराने के उद्देश्य से, वहां से होकर परेड करवाई जाती। कोड़े मारने की सजा खुले में दी जाती। मंच के लिए कभी-कभी तार के खंभों का भी उपयोग किया जाता। उनके चित्र आज भी इसकी गवाही देते हैं। सजाओं की घोषणा अचानक नहीं की जाती थी, बल्कि प्रचारित करके की जाती थी। एक बार तो कोड़े की दी जाने वाली सजा को देखने के लिए शहर की वेश्याओं को इकट्ठा किया गया था। केवल यही एक मात्र घटना थी जिसके बारे में समिति ने जब पूछताछ की, तब कैप्टन डोवटन की आंखों में शर्म की छाया दिखाई दी थी। इसी कैप्टन डोवटन ने छोटी-छोटी अन्य अनेक प्रकार की सजाओं की खोज की थी। उसका कहना था कि इन परिस्थितियों में जितना हो सके उतनी हल्की सजा देने

के आशय से वह ऐसी सजाएं देने का फरमान देता था।

शेखपुरा में फौजी शासन मिस्टर बोसवर्थ स्मिथ नामक गैर-फौजी आदमी के अधिकार में था। उसने स्वीकार किया कि मार्शल लॉ लागू करने की अनिवार्य आवश्यकता नहीं थी, परंतु यह लागू हुआ और लंबे समय तक चला, जो उचित ही था। अपने क्षेत्र के सभी केस उसी ने चलाए और अन्य स्थानों की तरह कोड़ों की सजा भी दी। 6 और 20 मई के बीच उसने 477 लोगों पर केस चलाए।

विद्यार्थियों को फौजी अधिकारियों के सामने दिन में तीन-चार बार उपस्थित होने का आदेश था। उसमें 5-6 बरस के बच्चे भी अपवाद नहीं थे। इसमें से एक लू लगने से मर भी गया। लड़कों से बार-बार यह कहलाया जाता कि "मैंने कोई अपराध नहीं किया है और करूंगा भी नहीं। मैं पश्चाताप करता हूं, मैं पश्चाताप करता हूं, मैं पश्चाताप करता हूं।" मेजर स्मिथ ने समिति के समक्ष कहा कि मेरा आदेश छोटे से छोटे बच्चे पर भी लागू होता था। केवल एकदम छोटे बच्चों को शाम की परेड से छूट दी जाती थी।

जलियांवाला बाग

अब हम अंत में पंजाब के सबसे अधिक बदनाम हुए जलियांवाला बाग कांड पर आते हैं। 13 अप्रैल को अमृतसर के जलियांवाला बाग में जनरल डायर नामक अंग्रेज अफसर ने, सभी ओर से घिरे हुए स्थान से बाहर जाने के एक मात्र संकरे द्वार पर, 100 हिंदुस्तानी और 50 अंग्रेज बंदूकधारी सिपाहियों को तैनात करके लोगों को हटने का अवसर दिए बगैर, मशीनगन से अंधाधुंध गोलियां चलाईं। अनुमानतः 20,000 की भीड़ पर 1,600 राउंड गोलियां चलाई गईं। गोलियां खत्म हुईं, तभी गोलीबारी रुकी। मर रहे और घायल लोगों को वहीं का वहीं पूरी रात पड़ा रहने दिया गया। उन्हें पानी तक नहीं पिलाया गया और न कोई इलाज ही

किया गया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार भी मृतकों की संख्या 400 और घायलों की संख्या एक हजार से दो हजार के बीच थी। अमृतसर की एक गली में साइकिल पर जाती हुई मिस शेरवुड नामक एक अंग्रेज युवती पर लोगों ने हमला किया। उस मोहल्ले के लोगों ने युवती को बचा लिया, फिर भी इस घटना का इस तरह बदला लिया गया कि इस गली में से जो भी गुजरता, उसे पेट के बल रेंगकर जाने का आदेश जारी किया गया। फौजी आयोग ने अमृतसर में 218 लोगों पर केस चलाया। उनमें से 51 को मृत्युदंड, 48 को आजन्म कारावास, 2 को दस वर्ष की, 79 को सात वर्ष की, 10 को पांच वर्ष की, 13 को तीन वर्ष की और 11 को इससे कम अवधि की कैद की सजा दी गई। जांच के दौरान जिम्मेदार अधिकारियों ने जरा भी पछतावा नहीं दिखाया। इसके विपरीत, और अवसर मिला होता तो और अधिक सख्तियां करते, उन्होंने ऐसा कहा। मई के महीने में पंजाब से मार्शल लॉ हटाने और पंजाब की घटनाओं की जांच की मांग हुई। पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर माइकल एडवायर के स्थान पर सर एडवर्ड मेकलोंग को नियुक्त किया गया।

जलियांवाला बाग कांड का देश और दुनिया पर भारी असर हुआ। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के तौर-तरीकों का नंगापन दुनिया के सामने खुलकर आया। कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर ने उन्हें मिली 'सर' की उपाधि लौटाने की तैयारी घोषित की। इंग्लैंड की संसद में भी जलियांवाला बाग कांड की चर्चा हुई। वहां यह कांड करने वाले जनरल डायर के 'निर्णय बुद्धि दोष' से ऐसा हुआ—इतना ही कहा गया। परंतु भारत के कवि ने गाया—

"गोलियां खाकर सोए जलियांवाला बाग में हम...
दिन खून के हमारे यारों न भूल जाना!"

खिलाफत

प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हो, इससे पहले ही तुर्की की खिलाफत के बारे में एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ, जिसने हिंदुस्तान के मुसलमानों को चिंतित कर डाला। तुर्की का सुलतान 'खलीफा' कहलाता था। पूरा इस्लामी जगत उसे धर्मगुरु मानता था। हिंदुस्तान के मुसलमानों को युद्ध में अपने पक्ष में रखने के उद्देश्य से अंग्रेज सरकार ने ऐसी घोषणा की कि युद्ध के बाद दूसरे शत्रुओं के साथ चाहे जो किया जाए, पर जर्मनी का साथ देने वाले सुलतान की हुकूमत को हम आंच नहीं आने देंगे। लगभग इसी दौरान अंग्रेज अपने मित्र राज्यों के साथ जो गुप्त वार्तालाप कर रहे थे, उसमें ऐसी योजना बनाई जा रही थी कि तुर्की का विभाजन कर उसे बांट लिया जाए। यूरोप में यह बात जगजाहिर हो गई। परंतु सख्त सेंसरशिप के कारण भारत में उसकी जानकारी नहीं हो पाई। जब इसका पता चला, तब मुसलमानों को काफी ठेस पहुंचा। उनके साथ वचनभंग और अन्याय हुआ है—इसका तीखा अहसास उन्हें हुआ। 1918 के अप्रैल महीने में युद्ध परिषद में गांधी जी ने यह बात वायसराय के सामने रखी। इस पर वायसराय ने उनसे कहा कि यह तो अखबार का समाचार है। जब तक सरकार की तरफ से अधिकृत रूप में पुष्ट खबर न आए, तब तक क्यों मानते हो। इसे गांधी जी ने मान लिया। खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों को दुखी देखकर अपने देशबंधुओं की संकट के समय उनकी मदद करनी ही चाहिए—यह विचार कर गांधी जी ने खिलाफत के प्रश्न को अपना प्रश्न बनाया। 1920 में धर्मगुरुओं की सभा में बोलते हुए उनके मन में यह विचार आया कि ऐसे अन्याय के प्रश्न पर तो 'असहयोग' भी हो सकता है। इस तरह भारत में गांधी जी ने पहली बार असहयोग के कार्यक्रम की बात कही।

दिल्ली में खिलाफत के अन्याय के बारे में आयोजित एक सभा

में गांधी जी उपस्थित रहे। उसमें मौलाना हजरत मोहानी भी थे। उन्होंने गांधी जी को संबोधित करते हुए अपने भाषण में कहा कि हमें आपके बहिष्कार के कार्यक्रम से संतोष नहीं है। जिससे तुरंत असर पड़े, ऐसा रास्ता बताओ। मौलाना का भाषण पूरा हुआ, उस समय गांधी जी मन में इसका जवाब सोच रहे थे। इस प्रसंग के बारे में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं :

> "उर्दू या गुजराती शब्द हाथ में न आया, इससे मैं शरमाया, पर जवाब तो दिया। मुझे 'नन-कोआपरेशन' शब्द सूझा। मौलाना भाषण कर रहे थे और मुझे लग रहा था कि वह स्वयं बहुत-सी बातों में जिस सरकार का साथ दे रहे हैं, उस सरकार के विरोध की बात करते हैं, जो बेकार है। तलवार से विरोध नहीं करना है, इसलिए साथ न देने में ही सही विरोध है—ऐसा मुझे लगा। मैंने 'नन-कोआपरेशन' शब्द का पहली बार प्रयोग इस सभा में किया। अपने भाषण में मैंने इसके समर्थन में दलीलें रखीं। उस समय इस शब्द में क्या-क्या समा सकता है, इसका मुझे ख्याल नहीं था। इसलिए मैं विस्तार में न जा सका। मैंने तो इतना ही कहा, ऐसा याद है : मुसलमान भाइयों ने एक दूसरा भी महत्त्व का निर्णय किया है। ईश्वर न करे, पर जो कहीं सुलह की शर्तें उनके विरुद्ध गईं, तो वे सरकार की सहायता करना बंद कर देंगे। मुझे लगता है कि यह प्रजा का हक है। सरकार के खिताब रखने या सरकारी नौकरी करने के लिए हम बंधे हुए नहीं हैं। जब सरकार के द्वारा खिलाफत जैसे अति महत्त्व के धार्मिक सवाल के बारे में हमें नुकसान पहुंचता है, तो हम उसकी सहायता क्यों करें? इससे खिलाफत का फैसला जो हमारे विरुद्ध जाए, तो सहायता न करने का हमें हक है।"
>
> (आत्मकथा, छठी आवृत्ति, पृ.646)

स्वराज के लिए असहयोग

असहयोग के बारे में तीसरा मुद्दा 'स्वराज' का था। यह शब्द देश के सामने सबसे पहले दादाभाई नौरोजी ने रखा। बाद में तिलक जी ने 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'—यह मंत्र दिया। गांधी जी ने 'हिंद स्वराज' पुस्तक में स्वराज की अपनी व्याख्या देकर यह कहा कि मात्र गोरे के बदले काले राजा आएं—इसी से सच्चा स्वराज नहीं आता। स्वराज में तो पूरी संस्कृति ही बदली जानी चाहिए। रौलेट कानून के विरुद्ध कानून भंग करने के लिए 'हिंद स्वराज' की प्रतियां सार्वजनिक रूप में बेची गई थी, यह हम देख आए हैं। पर हिंद स्वराज की गांधी जी की गहरी व्याख्या तो कांग्रेस या देश ने कभी स्वीकारी नहीं थी। असहयोग के मुद्दे के रूप में जिस स्वराज की बात हुई थी, वह उसके राज्य के परिवर्तन की ही थी। 1857 की बगावत के बाद, जब कंपनी सरकार के हाथों से इंग्लैंड की सरकार ने भारत का प्रशासन अपने हाथों में ले लिया, तब रानी के घोषणा-पत्र में आदर्श रूप में इसी बात को कबूला गया था कि आखिर में तो राजतंत्र हिंदुस्तानियों को ही सौंपना है। उसके बाद जब-तब ऐसी घोषणाएं ब्रिटिश सरकार की ओर से होती रहतीं, पर साथ-साथ इस बात की याद भी कराई जाती कि हिंदुस्तानी अभी स्वराज के लायक नहीं हैं, इसलिए शासन अंग्रेजों को संभालना पड़ा है।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद मोंटेग्यू और लॉर्ड चेम्सफोर्ड नामक दो अंग्रेज अधिकारियों की बनी समिति ने भी हिंदुस्तान के राजतंत्र के बारे में ऐसे 'सुधार' सुझाए थे। हम पहले देख आए हैं कि मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड की रिपोर्ट की भाषा में बड़े जोरदार शब्दों में यह कहा गया था कि भारत को स्वतंत्रता क्यों मिलनी चाहिए, परंतु इसे प्रदान करने के लिए अभी परिस्थितियां अनुकूल नहीं, इसलिए फिलहाल एकदम स्वराज दे देना गलत कदम सिद्ध होगा—यह कहने

में अगले भाग से भी अधिक जोरदार भाषा का प्रयोग किया गया था। कांग्रेस में इस सुधार की मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। तिलक जी जैसों का मत भी ऐसा था कि इस रिपोर्ट के अनुसार जितना मिले, ले लिया जाए और शेष के लिए लड़ा जाए।

पंजाब के हत्याकांड तक गांधी जी भी अंग्रेजों की नेकनीयति के प्रति आशावान थे। परंतु पंजाब की परिस्थिति की जांच हुई उस समय सरकारी आयोग 'हंटर कमीशन' के समक्ष अंग्रेज अधिकारियों ने कुछ अलग ही तेवर दिखाए। भारत और इंग्लैंड के गोरे शासकों का रवैया भी इस घटना के संबंध में नरम था। इसके अलावा, जनता की ओर से सही जांच करने के लिए कांग्रेस द्वारा गठित समिति के सदस्य के रूप में पंजाब में घूमते हुए जो स्थिति अपनी आंखों से देखी थी, उसके बाद से गांधी जी की ब्रिटिश राज के प्रति वफादारी पूरी तरह हिल गई। स्वराज प्राप्त करने के साधन के रूप में असहयोग के शस्त्र का प्रयोग करने का वातावरण तबसे बनने लगा। हालांकि असहयोग के कार्यक्रम को स्वीकारने में कांग्रेस को पूरा एक वर्ष लगा। असहयोग के विचार का विरोध मुख्यतः बंगाल और महाराष्ट्र में होता था। परंतु 1920 में पहले कलकत्ता में इसके बारे में कांग्रेस महासभा का विशेष अधिवेशन हुआ और बाद में वर्ष के अंत में नागपुर में महासभा का साधारण अधिवेशन हुआ। उन दोनों महासभाओं में यह सिद्ध हुआ कि देश के सामने गांधी के बताए सत्याग्रह के मार्ग के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं है। बंगाल और महाराष्ट्र में आयोजित अधिवेशनों में लाला लाजपतराय और देशबंधु चितरंजन दास—दोनों का ही असहयोग के प्रति विरोध था; इस हद तक कि कलकत्ता में अपने विचार की हार हुई देखकर दास बाबू नागपुर अधिवेशन में असहयोग का विरोध करने के लिए खासतौर पर 250 प्रतिनिधियों को लेकर आए थे। परंतु गांधी जी की समझाने की सूझ-बूझ और किसी के पास दूसरा विकल्प न होना—ये दो कारण ऐसे रहे कि अंत में नागपुर

में असहयोग का प्रस्ताव देशबंधु ने रखा और लाला जी ने उसका समर्थन किया।

तिलक महाराज को असहयोग के कार्यक्रम में पूरा विश्वास नहीं था, परंतु यदि वह सफल होता है तो उसे उनका आशीर्वाद था। 1 अगस्त 1920 से असहयोग आंदोलन का प्रारंभ होना था, परंतु दुर्भाग्य से उससे पहली ही रात को तिलक महाराज का देहांत हो गया। इससे असहयोग आंदोलन को लोकमान्य की प्रतिभा का लाभ नहीं मिला। परंतु श्रद्धालुओं ने कहा कि लोकमान्य ने अपनी विरासत महात्मा को दी है।

असहयोग आंदोलन

असहयोग के पीछे मुख्य सिद्धांत यह है कि कैसी भी निरंकुश सरकार जनता के प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन के बिना टिक नहीं



सकती। यदि जनता ही राजा के साथ असहयोग करे, तो उस राज्य का आधार ही खिसक जाएगा। अलबत्ता राज्य सहयोग प्राप्त करने के लिए सभी संभव जुल्म करेगा। परंतु यदि जनता उसके सामने टिकी रहे और हंसते-हंसते यह कष्ट सह ले, तो राज्य प्रशासन की नींव हिल उठेगी।

गांधी जी के विचार के अनुसार—"अहिंसा दुष्टता के आगे पालथी मारकर बैठने की स्थिति नहीं है। इसके विपरीत, मेरी कल्पना के अनुसार, अहिंसा दुष्टता का दुष्टता से होनेवाले प्रतिकार की तुलना में अधिक सक्रिय और अधिक सही प्रतिकार है।" गांधी जी अनीति का विरोध नीति से करने के हिमायती थे।

असहयोग के कार्यक्रमों में सरकारी मान-सम्मान के पदों और पदकों का त्याग, सरकारी दरबार आदि में उपस्थित रहने से इंकार, स्कूल-कालेजों का त्याग, वकीलों द्वारा अदालतों का बहिष्कार, स्थानिक स्वराज संस्थाओं, विधान सभाओं और प्रशासन के अन्य स्थानों का बहिष्कार तथा विदेशी माल-सामान के बहिष्कार का समावेश था।

नागपुर कांग्रेस के बाद भारत के इतिहास का मानो नया ही अध्याय शुरू हुआ। उसके पहले लोगों में अंग्रेजी राज के प्रति क्रोध था, परंतु उस क्रोध को रचनात्मक दिशा में मोड़ने का कोई साधन नहीं था। असहयोग के कार्यक्रम ने देश की इस भावना को प्रकट करने का एक बड़ा साधन प्रदान किया।

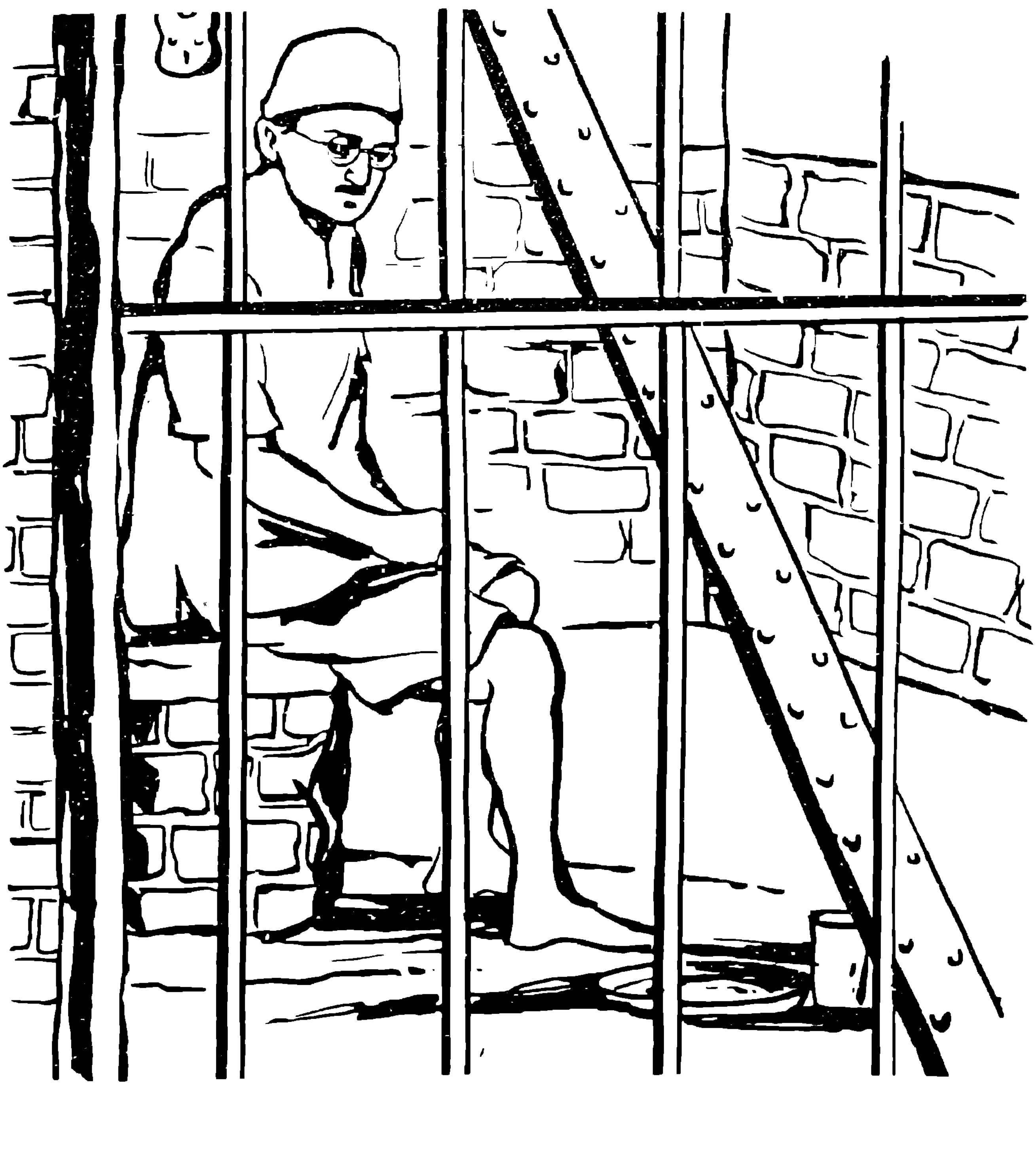
असहयोग की चुनौती को नौजवानों ने सबसे अधिक उत्साह से स्वीकार किया। जगह-जगह सरकारी स्कूल-कालेजों में से विद्यार्थी निकलने लगे। इस बारे में राष्ट्रीय नेताओं और अध्यापकों के भाषण सुनने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थियों की भीड़ एकत्र होती। परीक्षा के कुछ ही दिन शेष रह गए हों, तब भी विद्यार्थियों ने कालेज छोड़ दिए—ऐसे कितने ही प्रसंग देखने को मिले। जयप्रकाश नारायण और उनके कई साथी वैसे तो हर परीक्षा में अव्वल दर्जे

के नंबर लाते थे, परंतु मौलाना अब्दुल कलाम आजाद का भाषण सुनकर उन्होंने कालेज छोड़ दिए, बिना यह परवाह किए कि परीक्षा के थोड़े ही दिन शेष रह गए थे। जब आंदोलन धीमा पड़ा और अन्य साथी फिर से दाखिल होने लगे, तब जयप्रकाश जी जैसों ने अंग्रेज सरकार के शासन में चलने वाले कालेज में जाना पसंद नहीं किया। अंत में उन्होंने अमेरिका जाकर खुद की कमाई से आगे का अध्ययन किया। जगह-जगह असहयोग करके बाहर निकले लड़के-लड़कियों के लिए नया राष्ट्रीय शिक्षण प्रदान करने का प्रश्न उठा, जिससे राष्ट्रीय विद्यापीठ अस्तित्व में आया। अहमदाबाद का गुजरात विद्यापीठ, बनारस का काशी विद्यापीठ, नागपुर और खामगांव के तिलक राष्ट्रीय विद्यालय, बिहार का बिहार विद्यापीठ आदि संस्थाएं नई शिक्षा के धाम बने। इन संस्थाओं में शिक्षा लेने वाले विद्यार्थियों में से कइयों ने पूरा जीवन राष्ट्र की सेवा में लगा दिया।

बड़े-बड़े प्रसिद्ध वकील असहयोग में शामिल होने लगे। देशबंधु चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू आदि नेता असहयोगी वकीलों में से थे। अपनी लाखों रुपये की आमदनी छोड़कर उन्होंने देश सेवा की धूनी रमाई। इन वकीलों और अध्यापकों तथा अन्य नेताओं को सरकार ने किसी खास क्षेत्र में न जाने के आदेश दिए। इस आदेश की सविनय अवज्ञा करके इन लोगों ने गिरफ्तारियां दीं। पूरे देश में जगह-जगह से गिरफ्तारियों के समाचार आने लगे। ज्यों-ज्यों स्वराज की वेदी पर पवित्र लोगों के त्याग-बलिदान का चढ़ावा चढ़ेगा, त्यों-त्यों स्वराज नजदीक आएगा—ऐसा मानने वाले गांधी जी इन समाचारों से प्रसन्न होते थे।

'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' पत्रों द्वारा गांधी जी देश को अहिंसा के माध्यम से स्वराज का पाठ पढ़ाने लगे। जब किंग जॉर्ज पंचम के चाचा कॉनेट के ड्यूक भारत आया, तब उसके सम्मान में आयोजित समारोहों का देश भर में बहिष्कार किया गया। गांधी जी की दृष्टि में असहयोग आम जनता को अपनी अस्मिता और

शक्ति का अहसास करवाने का प्रयास था। लोग अगर सरकार की पाशविक शक्ति का डर मन से निकाल दें तो उन्हें अपनी सही शक्ति का अहसास हो। असहयोग ने देश की जो सबसे बड़ी सेवा की, वह यह है कि इसने साधारण हिंदुस्तानी के मन से भय का भाव दूर कर दिया। गांधी जी का पहला पाठ निर्भयता का था। जानबूझकर या अनजाने में भी बुराई का साथ देने से अलग रहने का नाम है असहयोग। बुराई के साथ असहयोग भलाई के साथ सहयोग करने जैसा कर्तव्य ही है—यह बात गांधी जी ने देश को सिखाई। अभी तक 'भद्र' माना जाने वाला वर्ग पहली बार इतनी बड़ी संख्या में पूरे सरकारी तंत्र के साथ असहयोग कर खुशी-खुशी जेल जाने लगा। हंटर कमीशन के समक्ष गांधी जी ने कहा था—"शारीरिक शक्ति के बदले आत्मिक शक्ति से और शुद्ध सत्य के बल पर लड़ने की हिमायत करने वाली यह हलचल है।"



खिलाफत आंदोलन के निमित्त असहयोग आंदोलन के समय देश में हिंदू और मुसलमान नेता जितने नजदीक आए, उतने आजादी की लड़ाई के इतिहास में और कभी नहीं आए। अली बंधुओं (मौलाना मुहम्मद अली व शौकत अली) के साथ गांधी जी लगभग पूरे देश में घूमे। तुर्की के खलीफा के प्रति हुए अन्याय के कारण हिंदुस्तान के मुसलमान इतने दुखी थे कि उन्होंने हिजरत करके देश छोड़कर चले जाने का विचार किया। इस प्रकार हिजरत करके जाने वाले लोगों के साथ वायव्य प्रांत के कच्चटाढ़ी गांव के पास सेना और लोगों के बीच जबरदस्त मुठभेड़ हुई। एक अनुमान के अनुसार अगस्त के महीने में 18,000 मुसलमान हिजरत कर रहे थे।

गांधी जी और अली बंधुओं के संयुक्त प्रयत्न से असहयोग के कार्यक्रम में भारी ज्वार आया। प्रदेश-प्रदेश में नेतागण सत्याग्रह के राष्ट्रव्यापी आंदोलन में कूद चुके थे। सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, राजेंद्र प्रसाद, जमनालाल बजाज, जयरामदास दौलतराम, जीवतराम कृपलानी, गंगाधरराव देशपांडे आदि नौजवान इस आंदोलन के समय ही नेता के रूप में उभरकर सामने आए। गांधी जी के साथ रहने वाले लोग भी असहयोग आंदोलन में जेल जा रहे थे। हरिलाल गांधी, महादेवभाई देसाई आदि अनेक लोग जेल जा चुके थे। मोतीलाल नेहरू ने अपना समाचार पत्र 'इंडिपेंडेंट' शुरू करने के लिए गांधी जी से महादेवभाई की सेवाएं मांगी। जब सरकार ने समाचार पत्र बंद करवाने के प्रयत्न किए, तब उन्होंने अपने हाथ से लिखी प्रतियां निकालकर वितरित कीं। नैनी जेल का महादेवभाई का अनुभव खराब था। देवदास गांधी द्वारा महादेवभाई से भेंट के बाद गांधी जी को लिखे पत्र में किया गया वर्णन उस समय की जेलों का चित्र प्रस्तुत करता है—"महादेवभाई को जेल के कपड़े पहनाए गए हैं। एक कोहनी तक की बांह वाला काला बनियान और चड्डी—और ये कपड़े भी

अत्यंत मैले, बदबूदार और जूं से भरे हुए हैं। दो कंबल दिये गए हैं, जिन्हें महीनों तक पानी का स्पर्श भी नहीं हुआ होगा, वे भी जुओं से भरपूर...। पानी के लिए एक जंग लगा लोहे का बर्तन दिया गया है। इस्तेमाल के बाद हर बार अंदर से जंग निकलकर थोड़े-से समय में पानी को जहरीला कर देता है। रात को पीने के लिए इस पात्र में पानी रखा ही नहीं जा सकता। सुबह वह पीला हो जाता है।

"नहाने के लिए एक गंदा कुंड है। उसका ही पानी पीने के काम आता है। नहाते समय एक लंगोट होता है। परंतु शरीर पोंछने के लिए कुछ भी नहीं। धूप में शरीर सुखाने के बाद वे ही उतारे हुए कपड़े फिर से पहनना। यहां के जाड़े में महादेवभाई जैसे स्वास्थ्य वाले गीले बदन कपड़े धोते और उसके सूखने तक केवल लंगोट ही पहने रहें—यह तो असंभव ही है।

"भोजन जेल का ही। कल घर से खाकर गए थे और शाम को वहां कुछ भी नहीं खाया था। आज सवेरे राब जैसा पदार्थ दिया गया, जो उन्होंने खाया था। उसमें कंकर और कचरे की तो बात ही क्या ?

"शौच के लिए दिन में बाहर खुले में जाते हैं। पानी लेने के लिए बर्तन वही। वह खुला ही रहता है। अभी बेड़ियां डालना बाकी है।"

(अग्निकुंड में खिला गुलाब, पृ. 245)

कुछ दिनों में तो प्रांत-प्रांत की जेल असहयोगियों से उफनने लगी। बंगाल ने प्रारंभ में असहयोग के विचार का विरोध किया था। परंतु नागपुर की कांग्रेस के बाद देशबंधु के नेतृत्व में वहां के लोग भी पूरे जोश के साथ सत्याग्रह में शामिल हुए। उनकी पत्नी की गिरफ्तारी तो उनसे पहले ही हो गई थी। देश का कोई भी भाग असहयोग के आंदोलन से अछूता नहीं रहा। हिंदुस्तान को पहली बार सही अर्थ में असहयोग के आंदोलन के माध्यम से अंग्रेजों की

सत्ता के सामने लड़ने का राष्ट्रीय कार्यक्रम मिला था। गांधी जी इस लड़ाई का संचालन करते थे और जहां कहीं लोग अहिंसा से विचलित होते थे, वे सारा दोष अपने सिर पर ले लेते थे।

कांग्रेस ने असहयोग का प्रस्ताव रखा और समग्र कार्यक्रम पूरे जोश से चला। उस समय गांधी जी ने कहा था कि यदि चंद शर्तें पूरी की जा सकें तो एक वर्ष में स्वराज मिल जाए। उनके इस वाक्य से मानो देश भर में बिजली की लहर दौड़ गई। गांधी जी द्वारा रखी शर्तें ऐसी थीं कि एक वर्ष में कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाए जाएं, तिलक स्वराज कोष में एक करोड़ रुपये एकत्र किये जाएं और बीस लाख चर्खे चालू किये जाएं। ये शर्तें ऐसी थीं कि यदि वे उस समय पूरी होतीं तो इससे कांग्रेस को आर्थिक आधार मिलता, संस्था के रूप में वह पूरे देश में फैल जाती और रचनात्मक कार्यक्रम की ठोस भूमिका तैयार होती। दुर्भाग्य से इन शर्तों में से केवल कोष एकत्र करने की शर्त ही पूरी हो सकी। गांधी जी ने तो इस हद तक कहा कि देश इन शर्तों को पूरा नहीं करेगा तो उन्हें और जीने की इच्छा नहीं रहेगी। यह सुनकर पूरे देश में अनेक स्थानों पर लोगों ने शर्तें पूरी करने के लिए जी-जान से परिश्रम किया। परंतु कांग्रेस का संगठन इतना सबल सिद्ध नहीं हुआ। सौभाग्य से गांधी जी ने शरीर छोड़ने की बात लंबे समय तक नहीं की थी। खूबी की बात तो यह थी कि एक वर्ष में स्वराज नहीं मिला, इसके बावजूद सत्याग्रह के विषय में देश का उत्साह कम न हुआ। यह उत्साह तो मानो बढ़ता ही जा रहा था।

चौरी चौरा

परंतु 1922 की फरवरी महीने की चौथी तारीख को एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण सारे देश को भारी धक्का लगा। उत्तर प्रदेश में गोरखपुर जिले के चौरी चौरा नामक गांव में लोगों की एक शांत

भीड़ पर पुलिस ने अंधाधुंध गोलीबारी की। इससे लोग भड़क उठे। जब पुलिस के पास गोलियां खत्म हो गईं, तो वे लोग दौड़कर थाने में जा छिपे। लोगों ने उनका पीछा किया और पुलिस थाने को आग लगा दी। परिणामस्वरूप 21 पुलिसवाले मारे गए। यह समाचार जब गांधी जी के पास पहुंचा, उस समय वे बारडोली में ना-कर (कर नहीं देने) के रूप में सविनय कानून तोड़ने की तैयारी में थे। पूरे देश की नजर बारडोली की तरफ लगी हुई थी। बारडोली के किसान भी सविनय कानून तोड़ने की लड़ाई उनके यहां से शुरू हो, इसके लिए तत्पर थे। लेकिन चौरी चौरा के समाचार से गांधी जी का हृदय जैसे चिर गया। 'मारो नहीं, मरना सीखो' का मंत्र देने वाला सत्याग्रही देश के किसी भी कोने में हिंसा हो—यह कैसे सहन कर लेता ! चौरी चौरा से पहले भी मुंबई और मद्रास (अब चेन्नई) में जनता द्वारा हिंसा हुई थी। इन सभी घटनाओं को गांधी जी ने ईश्वर द्वारा उन्हें सचेत करने के लिए भेजा संकेत समझा। अत्यंत दुखी हृदय से उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति के जेल से बाहर रह गए लोगों की मीटिंग बुलाई। उनके आगे अपनी वेदना व्यक्त की। लंबे विचार-विमर्श के अंत में गांधी जी कार्यसमिति को समझा सके और सविनय कानून तोड़ने की लड़ाई स्थगित कर दी गई। इस अवसर पर गांधी जी ने पांच दिन के उपवास भी किए। गांधी जी ने याद दिलाया कि "सत्याग्रह का प्रयोग करते हुए बिलकुल आरंभ में मुझे मालूम पड़ा कि सत्य के पालन में अपने विरोधी को पीड़ा देने की बात का स्थान नहीं है। विरोधी को पीड़ा देकर नहीं, स्वयं पीड़ा उठाकर सत्य का पालन करना चाहिए।"

आंदोलन स्थगित होने से जेल गये हुए और बाहर रहे अनेक नेताओं को निराशा हुई। देशबंधु दास ने तो इस निर्णय की खुलकर आलोचना की। जवाहरलाल नेहरू तथा मोतीलाल नेहरू भी इस निर्णय से निराश हुए। परंतु वर्षों बाद जवाहरलाल जी ने अपनी आत्मकथा में यह नोट किया कि गांधी जी का यह निर्णय सही था।

गांधी जी के साथियों में व्यापी निराशा देखकर सरकार ने यह निश्चय किया कि गांधी जी को गिरफ्तार करने का यह अच्छा समय है। 'यंग इंडिया' में लिखे उनके तीन लेखों के बहाने सरकार ने गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया। अहमदाबाद कोर्ट के बदले सर्किट हाउस में गांधी जी तथा 'यंग इंडिया' के प्रकाशक श्री शंकरलाल बैंकर पर मुकदमा चला। यह मुकदमा दुनिया के कुछ स्मरणीय मुकदमों में से एक था। परंतु हम उसका विवरण देने के मोह से यहां बचेंगे। इतना ही कहेंगे कि न्यायमूर्ति बुमफील्ड को गांधी जी द्वारा दिए उत्तर में, वे ब्रिटिश सरकार के वफादार नागरिक से भारत का भयंकर शोषण देखकर किस तरह 'बागी' बने, इसकी कहानी थी। भाषा की विनम्रता और सत्य की दृढ़ता का ऐसा मेल साहित्य में मुश्किल से ही दिखाई पड़ता है। न्यायमूर्ति ने भी समग्र मुकदमे के दौरान पूरे विवेक का पालन किया। गांधी जी को छह वर्ष की सजा देते हुए न्यायमूर्ति ने लोकमान्य तिलक का स्मरण किया और गांधी जी ने बदले में लोकमान्य के बराबर उन्हें सजा दी, इसके लिए न्यायमूर्ति का आभार माना। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने इस मुकदमे को 'महान मुकदमा' कहकर वर्णित किया।

रचनात्मक कार्य

छह वर्ष के बजाय गांधी जी दो वर्ष के बाद ही बीमारी के कारण जेल से छूटकर बाहर आ गए। उस समय असहयोग आंदोलन उतार पर था। कांग्रेसियों में असहयोग के आंदोलन में बदलाव हो या नहीं, इस बारे में बदलाववादी और गैर-बदलाववादी जैसा विभाजन हो गया था। आमतौर पर राजा जी, वल्लभभाई, जवाहरलाल जी, जमनालाल जी, जयराम दास, महादेवभाई जैसे नेता कार्यक्रम को न बदलकर रचनात्मक कार्य पर अधिक बल देने के मत के थे। जबकि मोतीलाल जी, देशबंधु, विट्ठलभाई जैसे वकील विधानसभा

में प्रवेश करके अंदर से लड़ने के मत के थे। गांधी जी ने जेल से छूटकर आने के बाद दोनों कार्यक्रम एक साथ चलाने की छूट दी। परंतु उनका स्वयं का झुकाव रचनात्मक कार्यक्रम की ओर विशेष रूप से रहा। 1925-1929 के पांच वर्ष एक तरह से देखा जाए तो देश ने दूसरी महातरंग की तैयारी में ही बिताए। इस तैयारी के दो प्रमुख पक्ष थे। गांधी जी ने अपना अधिकांश समय खादी, सांप्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, नशाबंदी जैसे रचनात्मक कार्यों के प्रचार एवं संगठन में बिताया। परंतु साथ ही साथ पूरे देश में व्यापक नहीं, पर क्षेत्र-विशेष में सीमित अनेक सीधे सत्याग्रह भी हुए, जिससे देश का उत्साह जैसे-तैसे टिका रहा। इतना ही नहीं, यह बढ़ा भी—ऐसा कहा जा सकता है। हम दूसरी महातरंग की बात पर आएं, इससे पहले इन सीमित सत्याग्रहों की संक्षेप में चर्चा कर लें।

झंडा सत्याग्रह

1923 में पुलिस ने नागपुर में एक सत्याग्रही जुलूस को अपना झंडा साथ लेकर सिविल लाइंस की ओर आगे बढ़ने से रोक दिया। स्वयंसेवकों ने झंडा लेकर जाने का आग्रह किया। उन्हें पकड़कर सजा दी गई। तबसे यह सत्याग्रह रोजमर्रा का कार्यक्रम बन गया। इसे कांग्रेस कार्यसमिति का आशीर्वाद मिला। वल्लभभाई पटेल ने इस सत्याग्रह का नेतृत्व किया। पूरे देश से स्वयंसेवकों की टुकड़ियां आ-आकर जेलों को भरने लगीं। सेठ जमनालाल बजाज को गिरफ्तार कर 3000 रुपये के दंड के बदले उनकी कार जब्त कर ली गई। परंतु नागपुर में इस कार का कोई खरीदार ही नहीं मिला। इसलिए इसे काठियावाड़ ले जाना पड़ा। इस सत्याग्रह का मूलभूत मुद्दा इतना ही था कि सरकार कहती थी कि स्वयंसेवकों को झंडा साथ लेकर फेरी लगानी हो तो अनुमति लेनी चाहिए और स्वयंसेवकों का

कहना था कि उन्हें झंडा साथ लेकर किसी भी सार्वजनिक मार्ग पर घूमने का अधिकार है। सरदार पटेल ने 18 मार्च को, जुलूस किस रास्ते से गुजरेगा, इसकी घोषणा की। सरकार ने उस जुलूस को रोके बगैर गुजरने दिया। इस प्रकार सत्याग्रहियों की जीत हुई।

बोरसद

2 दिसंबर 1923 से 8 जनवरी 1924 तक चले बोरसद के सत्याग्रह को महादेवभाई ने 'क्षिप्र विजयी' (जल्दी विजय प्राप्त करने वाला) सत्याग्रह का नाम दिया। खेड़ा जिले की बोरसद तहसील में बाबर देवा नामक एक डाकू का बड़ा खौफ था। दिन में छिपे वेश में आकर वह गांव को देख जाता और रात में अपने साथियों के साथ आकर धनिकों के घरों को लूट जाता। सरकार इस बारे में कुछ कर पाने में अक्षम थी। कुछ दिनों के बाद हत्या का मुजरिम एक दूसरा डाकू वहां लोगों को सताने लगा। सरकार के लोगों ने इस डाकू को बाबर देवा को पकड़ने के लिए साधा और उसे सरकारी भंडार से कुछ बंदूकों और सिपाहियों की मदद दी। इस डाकू ने सरकारी मदद का उपयोग अपनी खास डाकेजनी के लिए करना शुरू किया। सरकार ने इसके इलाज के तौर पर पूरी तहसील पर सामूहिक कर लादा और उसकी वसूली शुरू की। लोगों ने वल्लभभाई के पास जाकर शिकायत की। उन्होंने लोगों को कर न देने की सलाह दी। वल्लभभाई ने बीस स्वयंसेवक तैनात कर दिए, जो दिन-रात चौकसी करते। दरबार गोपालदास जी, अब्बास साहब आदि पूरी तहसील में घूमे। गांव-गांव में संगठन खड़े हुए। स्वयंसेवक नगाड़े लेकर पेड़ पर बैठते और कर वसूली के लिए जैसे ही अधिकारी आते दिखाई देते कि तुरंत नगाड़े बजाने लगते। तुरंत गांव के घरों को ताले लगा दिए जाते। घर को बंद देखकर अधिकारी मुंह लटकाए वापस चले जाते। दिन में बाजार बंद रखकर रात में पेट्रोमैक्स जलाकर बाजार

खुला रखा जाने लगा। पौने तीन लाख के दंड में से मात्र 900 जितनी राशि वसूल हुई और वह भी घर का जब्त किया हुआ माल-सामान बेचकर। जिले के मुख्य अधिकारी पर बोरसद गांव पर ही हमला करने की धमकी देती हुई चिट्ठी दरबार साहब को मिली, जिसे उन्होंने उस अधिकारी को सौंप दिया। इस घटना का अधिकारी पर गहरा असर पड़ा। जब तक दंड न भरने का सत्याग्रह चला, तब तक डाकुओं का एक भी हमला नहीं हुआ। अंत में गवर्नर ने तहसील की स्थिति की जांच के लिए गृह विभाग के सदस्य सर हेवर्ड को बोरसद भेजा। इनकी रिपोर्ट के आधार पर पुलिस लोगों पर खर्च न डाले और वसूली गई दंड की राशि लौटाए, यह निर्णय हुआ। एक तरह से देखा जाए तो इस सत्याग्रह की एक कमजोरी यह थी कि संगठन के लिए गांव की ही जातिगत संस्थाओं का उपयोग किया गया। बारैया लोगों को अहिंसा के पालन के लिए इतना ही कहा गया कि हमें तो दरबार साहब का आदेश है, इसलिए भाले अपने साथ न रखें। उन्होंने शांति का पूरा-पूरा पालन किया, परंतु उन्हें अहिंसा की कोई खास शिक्षा नहीं मिली।

वायकोम

गांधी जी के सत्याग्रह से प्रेरित होकर देश के अलग-अलग प्रदेशों में स्थानीय प्रश्नों को लेकर छोटे-बड़े अनेक सत्याग्रह हुए। उन सत्याग्रहों में वायकोम का सत्याग्रह उल्लेखनीय है। दक्षिण में छुआछूत इस हद तक प्रवेश कर गई थी कि अछूतों के स्पर्श से ही सवर्ण लोग अपवित्र नहीं होते, अपितु उनकी छाया मात्र पड़ने से भी नम्बूदरी ब्राह्मण अपवित्र हो जाते। इसलिए जब भी अछूत गांव में निकलते, तब उन्हें जोर से आवाज लगानी पड़ती कि "दूर रहिए माई-बाप !" दक्षिण में मुख्य मंदिर गांव के ठीक मध्य में होते हैं। इस मंदिर की ओर जाने वाले रास्ते पर एक सीमा से आगे जाने

पर अछूतों पर प्रतिबंध था। त्रावणकोर (वर्तमान केरल) का वायकोम गांव भी इस कुप्रथा से मुक्त नहीं था। इस बुरी प्रथा के विरोध में केरल के भाइयों ने सत्याग्रह शुरू किया। ये लोग भजन गाते-गाते मंदिर की ओर प्रयाण करने लगे। ब्राह्मणों ने इस रास्ते के बीच आड़े लकड़े बांधे और पहरे के लिए त्रावणकोर सरकार की पुलिस खड़ी रहने लगी। सत्याग्रही भाइयों का विचार तो इस कुप्रथा के विरोध में उपवास करने का था, परंतु गांधी जी की सलाह से उन्होंने ऐसा करने का विचार छोड़ दिया और जहां रुकावट सामने आए, वहां तक कीर्तन करते हुए जाकर वहीं भजन-कीर्तन करने का कार्यक्रम बनाया। केरल में बहुत अधिक वर्षा होती है। चौमासे के दिनों में इन सड़कों पर पानी भर जाता, तब सिपाही नाव में बैठकर पहरा देते। सत्याग्रही घुटने तक पानी में खड़े रहकर कीर्तन करते। जब सत्याग्रही कीर्तन न करते, तब शिविर में चर्खा कातते और स्वाध्याय करते।

यह कार्यक्रम अच्छा-खासा चौदह महीने चला। इस सत्याग्रह का निरीक्षण करने के लिए गांधी जी ने विनोबा जी को भी भेजा। आखिरकार वर्ष के अंत में गांधी जी स्वयं त्रावणकोर की यात्रा पर गए। तब उन्होंने वहां के नंबूदरीपाद ब्राह्मणों के साथ खूब शास्त्रार्थ किया। गांधी जी यह बात मानने को तैयार नहीं थे कि छुआछूत शास्त्रों में सिखाई गई बात है। ब्राह्मणों को उन्होंने ऐसा सिद्ध करने की चुनौती दी। परंतु कोई ऐसा कर न सका। गांधी जी तो इस हद तक कहते रहे कि यदि कोई यह सिद्ध कर दे कि वेदों में छुआछूत का आदेश है, तो वे वेदों को छोड़ने को तैयार हैं, किंतु छुआछूत को स्वीकारने को नहीं।

गांधी जी के हस्तक्षेप से 1926 में वायकोम के रास्तों के बाड़े खुल गए और अछूतों के लिए मंदिर के दरवाजे भी। चौदह महीने की तपस्या इस प्रकार सफल हुई।

बारडोली

1928 का बारडोली सत्याग्रह ऐसा था कि जिसने देशभर में गुजरात को मशहूर कर दिया और किसानों को सर उठाकर चलने का गौरव प्रदान किया। 1926 में सरकारी नियम के अनुसार गुजरात की तहसीलों में जमीन का लगान फिर से निर्धारित हुआ, जिसमें बारडोली तालुका का लगान 30% बढ़ गया। यह निर्धारण सरकारी अफसरों ने गांव का दौरा किए बिना ही दफ्तर में बैठकर मनमाने ढंग से किया। ये आंकड़े ऐसे बेसिर-पैर के थे कि जनता चाहती थी कि यह पूरा का पूरा पुनः निर्धारण रद्द हो। परंतु वल्लभभाई ने लड़ाई का मुद्दा लगान की जांच तक ही सीमित रखा। आंदोलन का नेतृत्व करने गांधी जी नहीं गए, परंतु उन्होंने वल्लभभाई को भेजा। उन्होंने बड़ी कुशलता से सारी लड़ाई का आयोजन और संचालन किया। बारडोली के सत्याग्रह के बाद ही वल्लभभाई को 'सरदार' का विरुद मिला।

वल्लभभाई ने इस प्रश्न को हाथ में लेने से पूर्व प्रथम तो कार्यकर्ताओं को भेजकर और बाद में स्वयं जांचकर यह पक्का कर लिया था कि किसान कष्ट सहन करने के लिए तैयार हैं न ? फिर शुरू हुआ बारडोली का जंग, जिसमें धीरे-धीरे जनता की सहनशक्ति और वल्लभभाई के नेतृत्व का विकास होता गया। तहसील में जगह-जगह सत्याग्रहियों की छावनियां डाली गईं। समग्र आंदोलन के समाचार देने के लिए श्री जुगतरामभाई के नेतृत्व में एक सत्याग्रह पत्रिका समिति की रचना हुई। आंदोलन के दौरान लोगों का उत्साह टिकाए रखने में सरदार पटेल की वाणी के बाद दूसरा स्थान जुगतरामभाई की कलम का गिना जाता था। लोगों ने लगान देना बंद किया, इसलिए सरदार ने जमीन जब्त करनी शुरू की। किसानों को पकड़कर उन्हें दंडित किया जाने लगा और दंड की रकम वसूलने के लिए गांव-गांव में जब्ती करनी शुरू की गई। लोगों

ने गजब का धीरज और साहस दिखाया। अपने कलेजे के टुकड़े जैसी जमीन को जब्त होने देने, हृदय के हार जैसे जानवरों की जब्ती या नीलामी होने देने तथा कई-कई दिनों तक जानवरों के साथ घर में बंद रहने में स्त्रियों ने पुरुषों से भी अधिक साहस दिखाया। इस सत्याग्रह में हिंदुस्तान के इतिहास में पहली बार स्त्री-शक्ति का सामूहिक स्वरूप प्रकट हुआ। सरदार के नेतृत्व की विशेषता यह थी कि वे किसानों को, जो उनकी समझ में आ जाए, ऐसी चोटदार भाषा में अपना विचार समझाते थे। सरकारी आंकड़े कैसे बेबुनियाद होते हैं—यह समझाते हुए विनोदपूर्ण ढंग से उन्होंने कहा था : "बादशाह ने पूछा—'दिल्ली में कौओे कितने ?' एक ने गप हांकी, 'आठ लाख अस्सी हजार तीन सौ बत्तीस।' कैसा उस्ताद गिनतीबाज ? सरकार का यह धंधा है कि झूठी बात को सच्चा बनाना हो तो खूब जोर से कहना और आंकड़ों की मार बरसाना।"

जब्ती के काम में मुश्किल होने पर सरकार ने पठानों को बुलाया। उन्होंने घरों में घुसकर दरवाजे तोड़े और बाड़े तोड़कर भैंसें उठा ले गए। एक-दो प्रसंगों में तो उन्होंने बहनों का हाथ पकड़कर उनका अपमान किया। सरदार पटेल ने पहले उत्साह का पाठ सिखाया, फिर खामोशी का, बाद में त्याग और अंत में विजय के अवसर पर नम्रता का पाठ पढ़ाया। गांधी जी अधिकतर साबरमती में रहकर ही सलाह देते। परंतु सरदार कदम-कदम पर यह विचारते 'बापू को यह कदम पसंद आएगा ?' इस लड़ाई में तहसील के खेत-मजदूर, किसान और जमीन के मालिक एक हुए। इस लड़ाई ने अछूत और सवर्णों को एक किया, हिंदू-मुसलमानों को एक किया। किसानों को अनेक प्रकार की यातनाएं सहन करनी पड़ीं। परंतु सारी लड़ाई के दौरान माफी मांगकर जेल से छूटकर आने का एक भी प्रसंग देखने को नहीं मिला।

अंत में सरकार ने बातचीत शुरू की। अधिक लगान भर दिया जाए तो सरकार जांच करने को तैयार हुई। सरदार पुराना लगान

भरने को तैयार थे। आखिर में पुराना लगान भरने, कैदियों को छोड़ने, जब्ती की जमीन वापस देने और पटेल-पटवारी, जिन्होंने त्याग पत्र दिए थे, उन्हें वापस काम पर लेना सरकार ने स्वीकारा। किंतु जो अत्याचार हुए थे, उनकी जांच का आग्रह सरदार ने नहीं रखा। बारडोली के पूरे सत्याग्रह का यश वल्लभभाई गांधी जी को देते हैं : "साबरमती के संत ने बड़ी शक्ति पैदा की है। आप हमें पागल कहो या दीवाना कहो, पर जब तक जीवित रहेंगे तब तक इन पागल किसानों के लिए मरने के लिए तैयार रहेंगे।"

इस प्रकार छह महीने की कठिन परीक्षा के बाद बारडोली के किसानों ने विजय प्राप्त की। जांच समिति ने जो जांच की, उसमें भी किसानों की ही बात सही सिद्ध हुई। आखिर की बातचीत में गवर्नर ने भी रुचि ली। उसके बाद प्रश्न आसानी से सुलझा। इस पूरी लड़ाई के दरम्यान और बातचीत के समय भी सत्याग्रहियों और नेताओं ने विनय और विवेक कभी नहीं छोड़ा। समाधान से मुंबई सरकार भी खुश हुई। गांधी जी कहते थे कि सत्याग्रह में किसी की हार नहीं, वरन् दोनों पक्षों की जीत होती है। इस बात का ही उदाहरण बारडोली सत्याग्रह ने प्रस्तुत किया।

साइमन कमीशन

बारडोली सत्याग्रह 1928 में हुआ। इसके कुछ महीने पहले भारत की दशा की जांच करने के लिए उसी वर्ष सर साइमन के नेतृत्व में एक आयोग अंग्रेज सरकार ने भारत भेजा था। इस समिति में भारत का एक भी प्रतिनिधि नहीं था। इसलिए देश ने उसका बहिष्कार घोषित किया। सरकार ने साइमन कमीशन के स्वागत की तैयारी कर रखी थी। लेकिन जनता ने उसका विरोध किया। ऐसे प्रदर्शनों के वक्त इलाहाबाद में जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी जैसी बुजुर्ग महिला को भी मारने में ब्रिटिश सरकार की

पुलिस को हिचक नहीं हुआ। पंजाब में ऐसे प्रदर्शनों में पुलिस ने लाला लाजपतराय की छाती पर बंदूक के कुंदे से प्रहार किया। ऐसा कहा जाता है कि इसी कारण हुए घाव से पंजाब के इस महान सपूत का प्राणांत हो गया।

नमक का कानून तोड़ दिया

अब हम राष्ट्रीय आंदोलन की दूसरी महातरंग तक आ पहुंचे हैं। बारडोली, बोरसद, वायकोम, खेड़ा आदि सत्याग्रह किसी खास अन्याय के विरोध में थे। अब हम जिस पर विचार करेंगे, वह सत्याग्रह प्रत्यक्ष रूप में सारे देश की आजादी की लड़ाई के साथ जुड़ा सविनय कानून के भंग का था।

11 मार्च की रात से आश्रम की भूमि और साबरमती के तट पर जनसमूह जुटने लगा। 12 मार्च की प्रातःकाल की प्रार्थना के बाद अपने 78 प्रतिज्ञाबद्ध अनुयायियों के साथ गांधी जी ने (बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के साथ कवियों ने जिसकी तुलना की है) यात्रा शुरू की। साबरमती से वे पैदल सूरत जिले के समुद्र के किनारे दांडी तक जाने वाले थे। पूरा अहमदाबाद शहर उन्हें असलाली तक छोड़ने आया। आंदोलन का निरीक्षण करने वालों में अच्छी-खासी संख्या विदेशी पत्रकारों की भी थी। दुनिया की दृष्टि इस यात्रा पर लगी हुई थी।

सरकार ने अपनी तरफ से पहला वार वल्लभभाई को पकड़कर किया। परंतु सरकार ने गांधी जी को खतरनाक नहीं माना। गांव-गांव में लोगों में उत्साह की लहर फैल गई। सारा देश जैसे बिजली का असर अनुभव कर रहा था। अपने साथियों को सच्चे सत्याग्रही बनने का पाठ पढ़ाते हुए और यह समझाते हुए कि अगर वे स्वयं पकड़े जाएं, तो उसके बाद सारा देश अहिंसा को कैसे अपनाए रहेगा, गांधी जी आगे बढ़ते रहे। दांडी कूच (यात्रा) की

फिल्म दिखाने के अवसरों पर बड़े शहरों में जुल्म होने लगे। 5 अप्रैल को वे दांडी पहुंचे। 6 अप्रैल की सुबह उपवास और प्रार्थना के बाद उन्होंने समुद्र के किनारे से चुटकी भर नमक उठाकर कानून को तोड़ा। सरोजिनी नायडू ने उन्हें 'नमक चोर' की पदवी दी। इसके बाद देश भर में लोगों को नमक बनाने, फिर सरकार जो भी सजा दे उसे सहन करने की गांधी जी ने सलाह दी।

सारे देश में यह कार्यक्रम जगह-जगह होने लगा। कराची, पेशावर, चेन्नई, कलकत्ता आदि स्थानों पर गोलीबारी भी हुई। पेशावर में तो बहुत-से लोग मारे गए। सरकार ने एक के बाद एक आर्डिनेंस (अध्यादेश) जारी किए। सरकार को जमानत न देने के कारण 'नव ज़ीवन' और 'यंग इंडिया' छपने बंद हो गए, किंतु अब इसके साइक्लोस्टाइल कॉपी निकलने लगे। आंदोलन जोर पकड़ता गया। तब भी गांधी जी ने अधिकारियों के सामाजिक बहिष्कार आदि का निषेध कर आंदोलन को अहिंसा की मर्यादा में रखा। सरकार ने अनेक पत्रिकाएं प्रकाशित कीं तथा इसके माध्यम से आम जनता में झूठी बातें प्रचारित करने लगी। उदाहरणस्वरूप हम तो हाथ से सूत कातने में मदद करते हैं; सरकार अपने ऋण में से प्रत्येक पांच रुपये में से चार रुपये जनता के कल्याण के लिए खर्च करती है; समुद्र तट का नमक खाने लायक नहीं होता है, इसलिए सरकार उसे नष्ट करती है, आदि। परंतु इससे सरकार की ही कलई खुली। पांच अप्रैल के दिन गांधी जी को अर्धरात्रि में गिरफ्तार कर लिया गया। इसके कारण देश भर में ही नहीं, वरन् पनामा, सुमात्रा, अफ्रीका आदि दूर-दूर के स्थानों पर हड़तालें हुईं। फ्रांस के अखबारों में आंदोलन का विवरण छपने लगा। अमेरिका के 102 पादरियों ने इसके समाधान के लिए एक प्रार्थना पत्र सरकार को लिखा।

गांधी जी गिरफ्तार हुए, इससे पहले उन्होंने धरासणा के नमक के ढेर को लूटकर कानून तोड़ने का अपना इरादा घोषित किया था। गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद इस कार्यक्रम को पूरा करने

के लिए जनता ने स्वतःप्रेरणा से जो मेहनत की, उसकी कहानी स्वयंसेवकों की सहन शक्ति और सरकार की पाशविक लीला की पराकाष्ठा के रूप में अहिंसा के इतिहास में अमर रहेगी।

गांधी जी के बाद अब्बास साहब टुकड़ी के नेता बने। उन्हें भी गिरफ्तार किया गया। उसके बाद उस टुकड़ी का नेतृत्व 'भारत कोकिला' सरोजिनी नायडू ने लिया। वे आगे बढ़तीं, उससे पहले पुलिस ने घेरा डालकर उन्हें रोक लिया। सभी वहीं खड़े रहे। मई महीने की धूप में भी वे पूरे दिन अडिग वहीं खड़े रहे। आस-पास के लोगों को पानी तक देने के लिए उन लोगों के नजदीक जाने नहीं दिया गया। रात्रि के एक बजे भोजन मिला। फिर वहीं रात्रि वास किया। 223 स्वयंसेवकों को पकड़कर तेरह दिन तक खुले में रखा गया। एक सप्ताह तक स्नान भी नहीं करने दिया गया। टुकड़ी नायक इमाम साहब ने भक्तिपूर्वक घुटने टेककर प्रार्थना की–"या खुदा, तू हमें शक्ति देना, हमारी और परीक्षा मत लेना।" फिर 21 मई के दिन 1570 स्वयंसेवकों ने नमक के ढेर पर सामूहिक आक्रमण किया। पुलिस ने लाठी बरसाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। आधे घंटे तक हुए लाठी चार्ज में 300 के लगभग स्वयंसेवक गंभीर रूप से घायल हुए। दो घंटे तक उन्हें वैसे-के-वैसे धूप में पड़े रहने दिया गया। परंतु लोगों ने चुपचाप सब सहन किया। कहीं-कहीं से मार के कारण कराहने की आवाज आती थी, परंतु चीत्कार नहीं सुनाई देती। सरकार को गाली देने का तो प्रश्न ही नहीं था। सत्याग्रह छावनी अस्पताल जैसी दिखने लगी। बैठे हुए स्वयंसेवकों के ऊपर से घुड़सवार दौड़ाये गए। उन्हें थोड़ा ढीला पड़ता देखकर सरोजिनी नायडू कूद पड़ीं। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। रात में टुकड़ी नायकों ने थके हुए स्वयंसेवकों को वापस जाने की छूट दी। कुछ लोग वापस गए भी। रात को मिलिट्री ने छावनी को घेरकर पंद्रह मिनट में खाली करने का नोटिस दिया। 200 स्वयंसेवक प्रार्थना करते हुए बैठे रहे। मिलिट्री ने घायल होकर

बिस्तर पर पड़े लोगों को भी मारा। कोई शिकायत का एक शब्द भी नहीं बोला। स्वयंसेवकों को उठा-उठाकर कंटीली बाड़ में फेंका गया। छावनी खाली करने में एक घंटा लगा। फिर भी 42 लोग डटे रहे। उन्हें गिरफ्तार करके दूर ले जाकर छोड़ दिया गया। दिन के अंत तक 740 लोग घायल हुए थे। 22 तारीख को फिर 150 नये स्वयंसेवकों को पुलिस ने मार-पिटाई कर घायल किया। उनमें से श्री भाईलालभाई, दाजीभाई पटेल वहीं शहीद हो गए। पुलिस ने उनके सीने पर चढ़कर लातें मारी थीं। डा. भास्कर पटेल ने मृतकों की लाश की जांच अथवा पोस्ट मार्टम रिपोर्ट जांचने की मांग की, पर उन्हें अनुमति नहीं दी गई।

जगह-जगह से मौत के लिए तत्पर सत्याग्रहियों की टुकड़ियां आगे आने लगीं। छावनी में स्वयंसेवकों पर अत्याचार ढाने के लिए आए सिपाहियों को भूख लगने पर सत्याग्रही प्रेम से फल खिलाते। बैठे हुए सत्याग्रहियों पर मोटर चलाने का गेरेट नामक अधिकारी ने आदेश दिया। परंतु मोटर चालक का मन नहीं माना। पूरे प्रदेश में धारा 144 लगा दी गई। स्टेशन को मिलिट्री ने अपने कब्जे में ले लिया। 31 मई और 1 जून को तो अत्याचार ही हद हो गई।

घायल स्वयंसेवकों के कपड़े उतारकर सिपाही उनकी गुदाओं में लाठियां घुसाते। गुप्तेंद्रियों को दबाने के किस्से तो असंख्य हुए। सिपाही घोड़े पर सवार होकर आते। परंतु कई बार सवार से अधिक करुणा घोड़े दिखाते। वे आगे बढ़ते हुए रुक जाते। एक सत्याग्रही को खून की उल्टी हुई, दो को मिर्गी आई। गुप्त अंगों में बबूल के कांटे चुभाने की घटनाएं भी हुईं। सिपाहियों द्वारा स्वयंसेवकों की मार-पिटाई की आवाज एक फर्लांग दूर खड़े लोगों को भी सुनाई देती। पुलिस सामान्य तौर पर सत्याग्रह टुकड़ी के नेता को गिरफ्तार करने के बाद स्वयंसेवकों को मारती। श्री नरहरि पारीख का सिर भी फूटा और वे जेल भी गए। कष्ट सहने के इस अद्भुत पराक्रम में गांधी जी के दो पुत्र—रामदास और मणिलाल के अलावा श्री

प्यारेलाल, दिनकर मेहता, रावजी पटेल आदि भी शामिल थे। चौमासे की शुरुआत होने से धरासणा का कार्यक्रम स्थगित कर दिया गया। परंतु सदा-सदा के लिए इसने सत्याग्रह के इतिहास में एक लोमहर्षक अध्याय रच दिया।

देशभर में इस लड़ाई के दौरान हुए कहर का वर्णन हम नहीं करते। लेकिन केवल गुजरात की स्त्रियों ने इसमें जिस तरह भाग लिया, इसे भुलाया नहीं जा सकता। शराब के अड्डों पर धरना देने (पिकेटिंग) से उन्होंने शुरुआत की। वे जेल गईं, लाठियां भी खाईं। स्त्रियों का जुलूस निकलता है। पुलिस की लाठी की मार के कारण उनकी सफेद साड़ियां लाल हो जाती हैं, परंतु सत्याग्रही बहनों का झंडा एक गिरती हुई बहन के हाथ से दूसरी बहन के हाथ में चला जाता है। ऐसे दृश्य गुजरात की भूमि के लिए नए नहीं रहे। उनमें से बड़ी उम्र की साधुचरित गंगा बहन के सिर फूट गए, लेकिन इसके बावजूद उन्होंने अद्भुत सहन शक्ति दिखाई। बोरसद में जमीन पर गिरी स्त्रियों की छाती पर से सिपाही बूट वाले पैरों से गुजरे।

नमक का कानून तोड़ने का आंदोलन गुजरात तक ही सीमित नहीं था। एक बार गांधी जी ने दांडी में नमक बनाया। उसके बाद नमक बनाने की घटना जंगल की आग की तरह पूरे देश में फैल गयी। जहां-जहां समुद्री किनारा था, वहां-वहां नमक बनाकर कानून तोड़ा जाने लगा। जहां समुद्र नहीं था, वहां दूर से समुद्र का पानी लाया गया और सरकार को सूचना देकर खुले में नमक बनाकर कानून तोड़ा गया। देश में अन्य अनेक स्थानों पर अन्यायपूर्ण कानून तोड़कर सविनय नियम भंग किया गया। स्त्रियों को विशेष रूप से शराब के अड्डों और विदेशी माल बेचने वाली दुकानों पर पिकेटिंग करने का काम सौंपा गया। सारे देश में हजारों स्त्रियों ने इस आंदोलन में भाग लिया। इतिहास में पहली बार भारत की स्त्रियों ने इतनी जागृति का अनुभव किया। सारे देश का वातावरण

ही मानो बदल गया। देश का कोई प्रदेश सविनय अवज्ञा के वातावरण से रंगे बिना नहीं रहा। साबरमती आश्रम के हमारे जैसे बच्चे अपने पिता को पुलिस की गाड़ी में बिठाकर जेल ले जाया जाता देखते, तब हम खुशी-खुशी कहते, "इस बार दो वर्ष से कम सजा मत पाइएगा।" । कष्ट सहना जब अपनी इच्छा से स्वीकारा जाता है, तब वह खुद एक सकारात्मक शक्ति जैसा बन जाता है। इसका यह उदाहरण था। उत्तर प्रदेश के श्री महावीर त्यागी ने 'स्वराज की लड़ाई के वे दिन' नामक अपनी छोटी-सी पुस्तक में उस समय के वातावरण का हू-ब-हू चित्रण किया है। मानवता की कोमल भावनाओं को वह कैसे स्पर्श कर जाता है, यह दर्शाने के लिए श्री त्यागी जब पकड़े गए, तब का उनकी पत्नी शर्मदा देवी और दूध पीती बच्ची उमा विषयक प्रसंग नीचे दिया गया है—

> "सरकार ने मुझे जेल में डाला। दो-चार दिन के बाद जेल में ही मुकदमा चला। अनेक दर्शक अंदर आए, जिनमें स्त्रियों की भी अच्छी-खासी संख्या थी। मजिस्ट्रेट अंग्रेज था। बैरक में से हथकड़ी डालकर हमें अदालत वाले चौक में लाया गया। कार्यवाही शीघ्र शुरू हुई। थोड़ी देर में शर्मदा भी वहां आ पहुंची। मुझे देखते ही उमा ने शोर मचा दिया, 'पापा, पापा !' और अपनी पाछी (वह अपनी मां को पाछी कहकर बुलाती थी) के कपड़े खींचने लगी। एक तो बागी की संतान और उस पर कई दिनों से बिछुड़ी हुई। उसे अदालत के नियमों का क्या ख्याल होता ! वह अट्ठारह महीनों की थी। जबरदस्ती करके मां की गोद से वह नीचे उतर पड़ी। घुटने के बल चलती हुई मेरे पास आ पहुंची और मेरे बनियान को पकड़कर खड़ी हो गई। मेरी आंखों में आंखें डालकर वह चिल्लाने लगी, 'गोदी, पापा, गोदी।' मजिस्ट्रेट भी तमाशा देखने लगा और वहां एकत्र हुई स्त्रियां अपनी भर आई आंखें पोंछने लगीं। मैंने अंग्रेजी में कहा, 'अदालत एक मिनट के

लिए बच्ची को चूमने की अनुमति दे तो मैं इसे गोद में उठा लूं।' मेरे इतना कहने पर तो स्त्रियां फूट-फूटकर रोने लगीं। पुरुष भी रूमाल निकालने लगे। मजिस्ट्रेट ने गदगद स्वर में कहा, 'तुम्हारे बीच आने की भगवान भी हिम्मत नहीं करेगा।' बस, मैंने उमा बिटिया को अपनी गोद में भर लिया।

''इस बच्ची ने गोद में आकर ऐसी खलबली मचा दी कि मैं भी दंग रह गया। यहां चूमती, वहां चूमती, कान में उंगली डालती, बाल खींचती, गुदगुदी करती। वह बोली, 'पापा, घर चलिए।' अदालत को मैं कुछ कहने जाऊं तो मेरे मुंह पर हाथ रख दे। एक तमाशा हो गया। लोग हंसते गए और प्रेम-जल पोंछते गए। अदालत का काम अटक गया। शर्मदा से कहा गया कि अपनी बच्ची को वह यहां से ले जाए। उसने जवाब दिया, 'अपने पापा को लिए बिना वह घर नहीं जाएगी।' सभी हंस पड़े। फिर पुलिस से कहा गया, 'बच्ची को अलग करो।' उमा मुझसे चिपट गई। परंतु पुलिस वाले रोती-बिलखती उमा को बाहर ले गए। मुकदमा शीघ्र ही पूरा हुआ। एक वर्ष के कठोर कारावास और पांच सौ रुपये अर्थदंड की सजा हुई। बैरक में ले जाने से पहले फिर एक बार उमा से मिलने का मुझे अवसर दिया गया। शर्मदा ने बहुत ही धैर्य से काम लिया।''

('स्वराज की लड़ाई के वे दिन', पृष्ठ 29-31)

गांधी जी ने कहा है : ''प्रेम दुनिया का सबसे अधिक असरकारक हथियार है, फिर भी वह इतना नम्र है जिसकी कल्पना न की जा सके।''

इस राष्ट्रीय आंदोलन का एक सदा के लिए याद रह जानेवाला अंक उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर खेला गया। खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में वहां के हजारों पठानों ने अहिंसा की प्रतिज्ञा ली थी। पठान स्वयंसेवकों को स्वयं खान साहब और उनके बड़े भाई

डा. खान साहब ने प्रशिक्षण दिया और उनकी जो सेना बनी, उसे 'खुदाई खिदमतगार' कहा गया। गांधी जी को आशा थी कि जब कोई बहादुर लड़ाकू प्रजा अहिंसा को स्वीकार करेगी तब वह तेजस्वी अहिंसा का उदाहरण पेश करेगी। यह बात खुदाई खिदमतगारों ने बहुत हद तक सही साबित की। पेशावर में पठानों के जुलूस ने हंसते-हंसते छाती पर गोलियां झेलीं। एक के बाद एक ग्यारह लोग धरती पर ढहर पड़े, परंतु पठान इधर-उधर न भागे। अंत में इन शांत लोगों पर गोलीबारी चालू रखने से गढ़वाल की इस पलटन ने इंकार कर दिया। गोरा हाकिम आदेश देता रहा, पर गढ़वालियों ने गोली नहीं चलाई। परिणामस्वरूप बाद में इस पलटन पर फौजी तरीके से मुकदमा चला और इन सभी ने लंबे समय की सजा भोगी। इन गढ़वालियों में से एक व्यक्ति दस-बारह वर्ष की सजा भोगने के बाद गांधी जी के आश्रम 'सेवाग्राम' में आकर थोड़े दिन रहा था।

आंदोलन के चलते देश की सभी जेलें भर गईं। अनेक स्थानों पर सरकार को कामचलाऊ जेलें खड़ी करनी पड़ीं। सत्याग्रहियों ने जेल के अंदर अपने मजदूरी के काम पूरे करने के बाद स्वाध्याय शुरू किया। गांधी जी ने जेल को महल समझने के लिए कहा था। सत्याग्रहियों ने जेल को विश्वविद्यालय में बदल डाला।

अहिंसक असहयोग, सविनय कानून भंग, बहिष्कार आदि के इस राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह पर पूरी दुनिया की नजर टिकी हुई थी। दांडी कूच और धरासणा में कितने ही विदेशी संवाददाता स्वयं उपस्थित रहकर रोज-ब-रोज के घटनाओं के विवरण तार द्वारा अपने समाचार पत्रों को भेजते रहे। ब्रिटिश पार्लियामेंट में भी इसका उल्लेख हुआ। आंदोलन खत्म करवाने हेतु पहले भी देश के हित के लिए चिंतित मध्यस्थ लोग सरकार पर दबाव डाल रहे थे। आखिरकार सरकार भी झुकी। सर तेज बहादुर सप्रू और मुकुंदराव जयकर जैसे विनम्र नेताओं को, जो मध्यस्थ की भूमिका भली प्रकार

निभा सकें, वायसराय लार्ड इरविन ने गांधी जी से मिलने के लिए यरवदा जेल में भेजा। वे गांधी जी के पास ऐसा संदेश लाए कि वायसराय गांधी जी से मिलने को तैयार हैं। गांधी जी ने कहा कि कांग्रेस कार्यसमिति जेल में हो, तब वे किसी प्रकार की बातचीत नहीं कर सकते। इन मध्यस्थ नेताओं ने यरवदा और दिल्ली के बीच दौड़धूप की या तार-संदेश भेजे। अंत में गांधी जी को जेल से छोड़ा गया और कांग्रेस कार्यसमिति को भी रिहा किया गया। कार्यसमिति की बैठकें दिल्ली में होने लगीं और गांधी जी वायसराय से मिलने लगे। ब्रिटिश पार्लियामेंट में उस समय के विपक्ष के नेता विंस्टन चर्चिल से यह सहा नहीं गया। 'इस अर्धनग्न फकीर' को ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि के महल की सीढ़ियां चढ़कर उसके साथ बराबरी का दावा ही नहीं, बल्कि बातचीत करते देखकर कट्टरपंथी पार्टी का यह नेता कांप उठा। परंतु इस मामले में वह कुछ हस्तक्षेप कर पाता, ऐसा नहीं था। दिल्ली में बराबर ऐसा ही हो रहा था। किन्हीं दो देशों के सेनापति जिस तरह युद्ध विराम के बाद मिलकर बातचीत करें, उसी तरह इस 'अर्धनग्न फकीर' के साथ बराबरी के स्तर पर, जिस साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था, उस ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि लार्ड इरविन ने बातचीत की। एक वर्ष पहले ही गांधी जी के पत्र का जिसने अपने सचिव के माध्यम से अपमानजनक उत्तर दिलवाया था और जिसके बारे में गांधी जी ने कहा था—'मैंने घुटने टेककर प्रार्थना की, पर इसके जवाब में मुझे पत्थर दिया गया', उसने समानता के स्तर पर कई दिनों तक बातचीत की। लार्ड इरविन के पास ब्रिटिश साम्राज्य की सैन्य शक्ति थी, जबकि गांधी जी के पास सत्य के सामने पशुबल दिखाते साम्राज्य के जुल्मों को खुशी-खुशी सहकर मुकाबला करने, दुनिया के इतिहास में कभी प्रयुक्त न हुए, ऐसे अहिंसक शस्त्र यानी सत्याग्रह की शक्ति थी। इस बातचीत के अंत में, 5 मार्च 1931 के दिन गांधी जी और वायसराय ने समझौते' पर हस्ताक्षर किए,

जो इतिहास में 'गांधी-इरविन समझौता' के रूप में जाना जाता है। यहां समझौते के विवरण में हम नहीं जाएंगे। दूसरी ओर, कई लोगों के लिए यह समझौता 'असंतोषजनक था। राष्ट्रीय दृष्टि से कई लोगों को ऐसा लगा कि सरकार झुक गई है। किसी भी बारे में क्षमादान हो तो ऐसा तो होगा ही। उस पर गांधी जी और इरविन धार्मिक दृष्टि से विचारते थे। वे दोनों मानते थे कि प्रतिपक्ष की ओर जितने अधिक उदार हो सकें उतना ही अच्छा। इस समझौते के द्वारा भारत ने यदि कोई सबसे बड़ी चीज प्राप्त की तो वह था बातचीत में समानता का स्तर। पिछले 45 वर्षों के इतिहास में मानो कांग्रेस मांगने वाली संस्था थी और अंग्रेज सरकार देने वाली। जबकि इस बातचीत और समझौते में भारत को इंग्लैंड से समानता का स्तर प्राप्त हुआ था। यहां से जो सिलसिला प्रारंभ हुआ, वह अंत में देश के लिए आजादी लाने वाली बातचीत तक पहुंच कर ही रुका। अहिंसा के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करना गांधी जी का सपना था और वे अहिंसा छोड़कर देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने को तैयार नहीं थे।

1917 से 1931 तक का जो काल हमने देखा, इस दौरान इस देश में सत्याग्रह का सूर्योदय हुआ और वह मध्याह्न को पहुंचकर अपनी अपूर्व तेजस्विता के साथ प्रकाशित हुआ। सत्याग्रह रूपी इस सूर्य ने अनेक प्रकार की किरणें फैलाईं। चंपारण में वह अन्याय के बयान और सत्य की घोषणा के रूप में प्रकट हुआ। अहमदाबाद में उसने पंच फैसले का रूप धारण किया। खेड़ा, बोरसद और बारडोली तथा राष्ट्रीय आंदोलन में यह ना-कर (कर नहीं देने) के रूप में बहुजनसुलभ बना। आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक बहिष्कार के रूप में यह 1920-22 के असहयोग आंदोलन में दिखाई दिया। इन सभी सत्याग्रहों के अतिरिक्त नागपुर, बारडोली और नमक सत्याग्रहों में सविनय कानून भंग के रूप में सत्याग्रह की प्रभा प्रकट हुई। वायकोम और अन्य अनेक सत्याग्रहों में शांत विरोध

प्रदर्शन के सौम्य स्वरूप में यह चमका। 'कूच', 'अहिंसक लूट', 'जेल भरो' आदि अनेक रूपों में यह दांडी, धरासणा, नागपुर, बारडोली की भांति देश भर में फैला-बढ़ा। इस प्रकार सत्याग्रह की विविध पद्धतियां दुनिया के सामने प्रस्तुत हुईं। इससे प्रेरणा पाकर देश और दुनिया में अनेक प्रकार की सत्याग्रह पद्धतियां आजमाई गईं और भविष्य में नम्रता के बावजूद दृढ़ता के साथ, सत्य का आग्रह रखकर, विरोधी के प्रति मन में प्रेम भाव रखकर, अन्याय का स्वयं कष्ट सहकर, दुनिया में नई-नई सत्याग्रह पद्धतियां खोजी जाएंगी और उपयोग में आएंगी, ऐसा निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

इस सत्याग्रह का सबसे बड़ा परिणाम तो यह हुआ कि देश स्वाभिमान के साथ जीने लगा। भारत की आम जनता के मन से लाचारी और भय की भावनाएं दूर हुईं। भारत की नारियां पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर उनके जैसे ही त्याग और समर्पण के साथ काम करने लगीं। इन सत्याग्रहों ने साहित्यकारों और कलाकारों को भी प्रेरणा दी। हर भाषा में वीरता, त्याग और बलिदान की भावना को पुष्ट करने वाले, अहिंसा की महिमा का गान करने वाले काव्यों, गीतों, नाटकों और उपन्यासों की रचना हुई। राष्ट्रीय शायर झवेरचंद मेघाणी जैसे कवियों ने अदालत में 'हजारों वर्ष की हमारी पुरानी वेदनाएं, कलेजा चीरती, कंपाती हमारी भय कथाएं' गाकर मजिस्ट्रेट सहित सारी अदालत की आंखों में आंसू ला दिए।

हमने यहां जिस सत्याग्रह का विचार किया, उसके निर्विवाद नेता तो महात्मा गांधी ही थे। परंतु इन सत्याग्रहों ने पूरे देश को मिट्टी में से मनुष्य बनाया। इसके साथ-साथ अपना सर्वस्व त्यागकर हंसते हुए कष्ट उठाने वाला एक ऐसा नेतृत्व वर्ग प्रदान किया कि जिनमें से बहुतों ने गांधी जी के बाद कई वर्षों तक देश की अगुवाई की। राष्ट्रीय स्तर पर सरदार वल्लभभाई पटेल, पंडित जवाहरलाल नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, बाबू राजेंद्र प्रसाद, मौलाना अब्दुल

कलाम आजाद जैसे कितने ही नाम हमें सहज ही याद आते हैं। परंतु सुभाष चंद्र बोस, डा. अंसारी, जीवतराम कृपलानी, सरोजिनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, खान अब्दुल गफ्फार खां और हकीम अजमल खान आदि का योगदान भी इन आंदोलनों में कुछ कम नहीं था। इन आंदोलनों ने देश के नौजवानों को जगाया और इस कारण 1930 से 1947 तक के समय के नेताओं की इस देदीप्यमान नीहारिका में जयप्रकाश नारायण, युसुफ महेरअली, डा. राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, अरुणा आसफअली, अशोक मेहता आदि के नाम भी चमके। हम ऐसों को भी कभी नहीं भूल सकते जिन्होंने 30-40 या 50 वर्षों तक रचनात्मक कामों में खपकर सत्याग्रह के मेरुदंड को मजबूत किया। ठक्कर बापा, विनोबा भावे, किशोर लाल मशरुवाला, स्वामी आनंद, जाजूजी, अनसूयाबहन, साराभाई, शंकरलाल बैंकर, गुलजारीलाल नंदा, धीरेंद्र मजुमदार, लक्ष्मी नारायण साहू, गोप बंधु चौधरी, रमा देवी, जार्ज जोसेफ, के. केलप्पन, आर्य नायकम् दम्पती, मालती देवी चौधरी, वियोगी हरि आदि के नाम भी इनमें गिने जा सकते हैं। हम सत्याग्रह आंदोलन में शहीद हुए जतीन दास और फांसी विजय, भाईलालभाई, दाजीभाई पटेल, बाबू गेनू, महादेवभाई देसाई और कस्तूरबा, हेमू कालाणी आदि के नाम भी इतनी ही श्रद्धा से लेंगे जितने स्वतंत्रता आंदोलन में हिंसक रास्ते पर चलकर शहीद हुए खुदीराम बोस, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु आदि के नामों का स्मरण करते हैं। ऐसे भी अनेक होंगे जिन्होंने सत्याग्रह की लड़ाइयों में बलिदान दिए, पर जिनके नाम प्रकाश में नहीं आए होंगे। आज भी ऐसे लोग जीवित हैं जिन्होंने धरासणा में अपनी हड्डियां तुड़वाई और आज भी जिन्हें हर चौमासे में यह हड्डियों का दर्द वीरता के उन दिनों की याद दिलाता है।

सत्याग्रह और सत्याग्रही की वह वीर गाथा मात्र गांधी-इरविन समझौते पर ही जाकर नहीं रुकती। एक से बढ़कर एक दृश्यों वाली

यह गाथा 15 अगस्त 1947 के दिन हमारे देश को आजादी दिलाकर ही पूरी होती है। परंतु सत्याग्रह के इतिहास के उत्तरार्ध की कथा के लिए हमें दूसरी पुस्तकों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यहां तो हम इतना ही गाकर रुकेंगे कि :

'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है।'